

गुरु, गायत्री मन्त्र एवं अधिष्ठाता ब्रह्मऋषि विश्वामित्र

डॉ यतेंद्र शर्मा



श्री राम कथा संस्थान पर्त,
ऑस्ट्रेलिया - ६०२५

गुरु, गायत्री मन्त्र एवं अधिष्ठाता ब्रह्मऋषि विश्वामित्र

गुरु, गायत्री मन्त्र एवं अधिष्ठाता ब्रह्मऋषि विश्वामित्र

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक



श्री राम कथा संस्थान पर्थ,
ऑस्ट्रेलिया – ६०२५

Website: <https://shriramkatha.org>

Email: srkperth@outlook.com

२१ जून २०२१

(गायत्री जयन्ती २०२१)

विषय-सूची

समर्पण	4
गुरु वंदना	5
गुरु महत्व	6
ब्रह्मऋषि विश्वामित्र	21
पारवारिक परिचय	21
कामधेनु गौ हरण प्रयास	23
दसराज्ञ युद्ध	27
महर्षि वशिष्ठ से एकल युद्ध	40
गहन तप के लिए प्रस्थान	42
अप्सरा मेनका प्रति आकर्षण	45
विश्वरथ को गायत्री मन्त्र और ब्रह्मऋषि उपाधि	53
गायत्री मन्त्र महात्मय	57
माँ गायत्री आरती	66

समर्पण



**देवो रुष्टे गुरुस्त्राता गुरो रुष्टे न कश्चनः।
गुरुस्त्राता गुरुस्त्राता गुरुस्त्राता न संशयः॥**

(देवता रूठ जाएं, तो गुरु रक्षा करते हैं। अगर गुरु रूठ जाएं तो कोई नहीं बचा सकता। गुरु ही रक्षक हैं, गुरु ही रक्षक हैं, गुरु ही रक्षक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।)

**परम पूज्य भगवान् श्री गुरुदेव
को सादर समर्पित**

गुरु वंदना

ओं, ओं, ओं ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परमब्रह्म, तस्मयी श्री गुरुवे नमः ॥

गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव शंकर महादेव हैं। गुरु परब्रह्म हैं। मैं गुरु को प्रणाम करता हूँ।

इस जीवन में अंधकार को मिटाने वाले एक गुरु ही हैं। गुरु एक संस्कृत का शब्द है, गु + रु। गु का अर्थ है अन्धेरा, एवं रु का अर्थ है, विनाशकारक। अतः गुरु का अर्थ है 'अन्धकार का विनाशकारक'।

गुरु ही त्रिमूर्ति, ब्रह्मा, विष्णु और शिव, के स्वरूप हैं। गुरु ही ब्रह्म के आकार हैं, जो विद्या प्रदान करते हैं। गुरु ही विष्णु स्वरूप हैं जो हमारी जीवन के आधार हैं। गुरु ही शिव के रूप हैं जो हमारे सांसारिक चक्षुओं को खोलकर हमें शांति का मार्ग प्रदर्शित करते हैं। हमारे जीवन में अमृत प्रदान करने के लिए गुरु विभिन्न प्रकार से हमारे अज्ञान का विनाश करते हैं। गुरु अपार शक्ति हैं। निःस्वार्थ भावना से हमारे कल्याण का सदैव ध्यान रखने वाले गुरुदेव को हम शत शत प्रणाम करते हैं, तथा अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं।

गुरु महत्व

सृष्टि के आरंभ से ही गुरु की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, रामायण, श्रीमद्भागवतगीता, गुरुग्रन्थ साहिब आदि सभी धर्मग्रन्थों एवं सभी महान संतों द्वारा गुरु की महिमा का गुणगान किया गया है। गुरु और भगवान में कोई अन्तर नहीं है। गुरु ही अनंत हैं।

किसी भी प्रकार की विद्या अथवा ज्ञान हो, उसे दक्ष गुरु ही सिखाने में समर्थ हैं। जप, तप, यज्ञ, दान आदि की विधि में गुरु का दिशा निर्देशन आवश्यक है। शास्त्रों में ऐसा वर्णित है कि अविधिपूर्वक किए गए शुभ कर्म भी व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं, उनका कोई उचित फल नहीं मिलता। स्वयं की अहंकार की दृष्टि से किए गए सभी उत्तम माने जाने वाले कर्म भी मनुष्य के पतन का कारण बन जाते हैं, अतः भौतिकवाद में भी गुरु के ज्ञान दर्शन की अत्यंत आवश्यकता है।

गुरु के महत्व की एक झलक भगवान् आदि गुरु श्री शंकराचार्य द्वारा रचित 'श्री विवेक चूणामणि' में स्पष्ट देखी जा सकती है।

**पंडित ज्ञानी सब ग्रंथा, पूजत देव विकसित संधा ।
चाहे करत सदा शुभ कर्मा, ब्रह्महीन समान वृक्ष उर्मा ॥**

चाहे सब ग्रंथों का पंडित ज्ञानी हो, सभी देवों की पूजा कर उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये हों, सदैव शुभ कर्म करता हो, ऐसा मनुष्य अगर आत्मज्ञान रहित है (ब्रह्म का ज्ञान नहीं है), तो वह खजूर के वृक्ष के समान है।

**जब तक न हो आत्म बोधन, पा न सके मुक्ति सौ पदन ।
आत्मबोध जस अमृता, युक्ति अन्य सम पाय विषयता ॥**

जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक मुक्ति नहीं मिलती चाहे सौ जन्म बीत जाएँ। आत्मज्ञान अमृत की तरह है जबकि और उपर्युक्त साधन धन, धान्य और ऐश्वर्य प्राप्ति के हैं।

**कर्म न साधन मुक्ति हेतु, आत्मज्ञान अद्वितीय भवसेतु ।
गुरु समर्पित बुद्धिमाना, अर्जित ज्ञान पाएं निरवाना ॥**

कर्म द्वारा मुक्ति (मोक्ष) नहीं मिल सकती। आत्मज्ञान ही इस भवसागर का सेतु है। इसलिये ज्ञानी लोग अपने आप को गुरु को समर्पित कर निर्वाण (आत्मज्ञान) का ज्ञान प्राप्त करते हैं। गुरु ही आत्मज्ञान देने में समर्थ है।

गुरु के महत्व पर संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस में लिखा है।

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई। जों बिरंचि संकर सम होई॥

‘भले ही कोई ब्रह्मा या शंकर के समान ही क्यों न हो, गुरु के बिना भव सागर पार करना असंभव है।’

संत शिरोमणि तुलसीदास जी श्री रामचरितमानस में आगे लिखते हैं ।

**बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर ॥**

'गुरू मनुष्य रूप में नारायण ही हैं। मैं उनके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ। जैसे सूर्य के निकलने पर अन्धेरा नष्ट हो जाता है, वैसे ही उनके वचनों से मोहरूपी अन्धकार का नाश हो जाता है।'

माता शबरी से अरण्य वन में मिलन पर भगवान् श्री राम ने माता को नवविधाभक्ति का ज्ञान देते हुए गुरु के चरणों की सेवा भक्ति के रूप में बताई है।

गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।

'तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरु के चरण कमलों की सेवा। '

महान संत श्री कबीर दास जी का साहित्य तो गुरु महत्व और वंदन से भरा पड़ा है।

संत कबीर दास जी कहते हैं कि सबसे बड़ा तीर्थ स्वयं गुरुदेव ही हैं, जिनकी कृपा से फल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। गुरुदेव का निवास स्थान ही हम मनुष्यों के लिए तीर्थ स्थल है। उनका चरणामृत ही गंगा जल है। वह मोक्ष प्रदान करने वाला है।

तीरथ गए तो एक फल, संत मिले फल चार ।

सद्गुरु मिले तो अनन्त फल, कहे कबीर विचार ।।

संत कबीर दास जी आगे कहते हैं मनुष्य का अज्ञान यही है कि वह भौतिक जगत को ही परम सत्य मान लेता है, और उसके मूल

कारण चेतन को भुला देता है। सृष्टि की समस्त क्रियाओं का मूल चेतन शक्ति ही है। चेतन मूल तत्व को न मान कर जड़ शक्ति को ही सब कुछ मान लेना अज्ञानता है। इस अज्ञान का नाश कर, परमात्मा का ज्ञान कराने वाले गुरु ही होते हैं। इस अज्ञान को दूर करने के लिए गुरुदेव की शरण में जाना अत्यंत आवश्यक है।

गुरु से ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रथम आवश्यकता समर्पण की होती है। समर्पण भाव से ही गुरु का प्रसाद हमको मिलता है। हमें अपना सर्वस्व समर्थ गुरु देव के चरणों में समर्पित कर देना चाहिए।

संत कबीर दास जी कहते हैं:

यह तन विष की बेलरी, और गुरु अमृत की खान ।
शीश दियां जो गुरु, मिले तो भी सस्ता जान ॥
गुरु बिन ज्ञान न उपजै, गुरु बिन मिलै न मोष ।
गुरु बिन लखै न सत्य को, गुरु बिन मिटे न दोष ॥

गुरु को गोविंद से भी ऊँचा बताया है।

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पायं ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय ॥

गुरु की आवश्यकता के बारे में श्री सद्गुरु शिर्डी साईं नाथ ने 'श्री साईं सच्चरित्र' में बहुत ही अच्छी तरह से समझाया है। श्री सद्गुरु शिर्डी साईं बाबा ने कहा कि है जब भगवान् श्री राम और भगवान् श्री कृष्ण को भी गुरु महाऋषि वशिष्ठ और गुरु महाऋषि संदीपनी

जी की शरण में जाना पड़ा था, तब हम साधारण मनुष्यों का उत्थान गुरु के बिना कैसे हो सकता है?

शिर्डी साईं ने आगे कहा है कि यह संसार एक भयावह जंगल की तरह है जहाँ माया रूपी घने वृक्ष, गड्ढे, खाईयां और जंगली जानवर निगलने को बैठे हुए हैं। गुरु एक वह पथ प्रदर्शक हैं जो इस रास्ते से सुरक्षित निकालकर, इन मायारूपी भयावह जंगलों, सिंह, भेड़िये और खंदकों से रक्षा करते हुए, निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचाते हैं।

माँ सहजो बाई, अठारवीं सदी के संत शिरोमणी श्री चरण दास जी की शिष्या, ने तो गुरु महत्व को अत्यंत सुलभ ढंग से समझाया है।

राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ ।
गुरु के सम हरी को ना निहारूँ ॥
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ ।
गुरु के सम हरी को ना निहारूँ ॥

हरी ने जन्म दियो जग माहीं ।
गुरु ने आवागमन छुड़ाई ॥
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ ।
गुरु के सम हरी को ना निहारूँ ॥

हरी ने पाँच चोर दिए साथा ।
गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा ॥
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ ।
गुरु के सम हरी को ना निहारूँ ॥

हरी ने कुटुम्ब जाल में घेरी ।
गुरु ने काटी ममता बेड़ी ॥
राम तज्जुँ पै गुरु ना विसारूँ ।
गुरु के सम हरी को ना निहारूँ ॥

हरी ने रोग भोग उरझायू ।
गुरु जोगी कर सबई छुड़ायू ॥
राम तज्जुँ पै गुरु ना विसारूँ ।
गुरु के सम हरी को ना निहारूँ ॥

हरी ने कर्म भर्म भर्मायू ।
गुरु ने आतम रूप दिखायू ॥
राम तज्जुँ पै गुरु ना विसारूँ ।
गुरु के सम हरी को ना निहारूँ ॥

हरी ने मोसूँ आप छिपायो ।
गुरु दीपक दे ताहि दिखायो ॥
राम तज्जुँ पै गुरु ना विसारूँ ।
गुरु के सम हरी को ना निहारूँ ॥

फिर हरी बँध-मुक्ति गति लाए ।
गुरु ने सबही भर्म मिटाए ॥
राम तज्जुँ पै गुरु ना विसारूँ ।
गुरु के सम हरी को ना निहारूँ ॥

चरण दास पर तन मन वारूँ ।
गुरु ना तजू, हरि को तज डारूँ ॥
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ ।
गुरु के सम हरी को ना निहारूँ ॥

एक अन्य संत द्वारा गुरु महत्व का कितना अच्छा चित्रण है ।

गुमनामी के अँधेरे में था, एक पहचान बना दिया ।
दुनिया के गम से मुझे, उन्होंने अनजान बना दिया ।
गुरुजी की ऐसी कृपा हुई, मुझे अच्छा इंसान बना दिया ।

गुरु जब शिष्य को स्वीकार कर दीक्षा देते हैं, तभी से उसका उत्थान प्रारम्भ हो जाता है। गुरु ज्ञान के प्रति शंका करने से शिष्य का पतन होता है, ऐसा सनातन धर्म शास्त्रों में उल्लेख है।

सद्गुरु एक ऐसी शक्ति है जो शिष्य की सभी प्रकार के कष्टों से रक्षा करती है। शरणागत शिष्य के दैहिक, दैविक, भौतिक कष्टों को दूर करने एवं उसे बैकुंठ धाम में पहुंचाने का दायित्व गुरु का होता है।

आनन्द अनुभूति का विषय है। बाह्य वस्तुएँ कुछ शारीरिक सुख सुवधाएं तो दे सकती हैं, किन्तु मानसिक शांति नहीं। मानसिक शांति के लिए गुरु के चरणों में आत्म समर्पण करना परम आवश्यक है। गुरुदेव का ध्यान मनुष्य को नारायण स्वरूप बना देता है, एवं उसे मुक्ति का अनुभव होने लगता है।

ब्रह्म निराकार है, इसलिए उनका ध्यान करना अत्यंत कठिन प्रतीत होता है। परन्तु गुरुदेव के ध्यान से निराकार ब्रह्म साकार में परवर्तित हो जाता है। गुरुदेव स्वयं नारायण स्वरूप हैं, अतः उनके नित्य ध्यान से जीव नारायणमय हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गुरु रूप में शिष्य अर्जुन को यही संदेश दिया था।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ गीता १८/६६

भगवान् कृष्ण कहते हैं, 'हे पार्थ, सभी साधनों को छोड़कर केवल नारायण स्वरूप गुरु की शरणगत हो जाना चाहिए। वे उसके सभी पापों का नाश कर देंगे। शोक नहीं करना चाहिए।'

जिनके दर्शन मात्र से मन प्रसन्न होता है, धैर्य और शांति की अनुभूति होती है, वे परम गुरु हैं। जिनके रोम रोम में ब्रह्म का तेज व्याप्त है, जिनका मुख मण्डल तेजोमय है, जिनके मुख मण्डल से निकली आभा से प्रभावित हुए बिना कोई नहीं रह सकता, ऐसे सद्गुरु को हम प्रणाम करते हैं।

**ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षीभूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुंतं नमामि ॥**

ब्रह्म में लीन गुरु आनंद दाता हैं। वह अनंत हैं। वह ज्ञान के भण्डार हैं। भेद भाव से दूर वह आसमान की तरह अनंत हैं। ऐसे अन्तर्यामी एवं पवित्र आत्मा को मैं प्रणाम करता हूँ।

यह मानव शरीर बड़े यत्न से प्राप्त हुआ है। गुरु से दीक्षा ले, हे मनुष्य इस शरीर को पावन बना अपने लक्ष्य की (निर्वाण) प्राप्ति कर। गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं:

**बड़े भाग मानुष तन पावा | सुर दुर्लभ सद ग्रन्थन्दि गावा ॥
साधन् धाम मोक्ष कर द्वारा | पाई न जेहिं परलोक सँवारा ॥**

आधुनिक युग में कईओं का ऐसा विश्वास है कि गुरु सांसारिक सफलता प्रदान करने की एक सीढ़ी हैं। यह सर्वथा भ्रम है। गुरु का संसर्ग सन्मार्ग दिखाते हुए भगवान् की प्राप्ति के लिए होता है, कोई सांसारिक सुख सुविधाएं देने के लिए नहीं।

'सिद्ध पुरुषों एवं गुरु की अनुकम्पा मात्र लोक-हित एवं सत्प्रवर्ति-संवर्धन के निमित्त मात्र ही होती है। किसी को ख्याति, सम्पदा अथवा कीर्ति दिलाने के लिए उनकी कृपा नहीं बरसती। विराट ब्रह्म-विश्व मानव ही उनका आराध्य होता है। उसी के निमित्त अपने शिष्यों को वह लगाते हैं। स्मरण कीजिए गुरु-शिष्य सम्बन्ध इन महान विभूतिओं का, श्रीरामकृष्ण परमहंस-स्वामी श्री विवेकानंद, समर्थ गुरु श्री राम दास-क्षत्रपति श्री शिवाजी महाराज, गुरुदेव श्री चाणक्य-सम्राट चन्द्रगुप्त, महात्मा भगवान् बुद्ध-चक्रवर्ती सम्राट अशोक इत्यादि। जिनकी आत्मीयता में लोक-हित एवं सत्प्रवर्ति-संवर्धन ना होकर सिद्धि-चमत्कार, कौतिक-कौतूहल, दिखाने या

सिखाने का क्रिया-कलाप चलता रहा हो, वहां समझना चाहिए कि गुरु और शिष्य की क्षुद्र प्रवृत्ति है, और जादूगर जैसा कोई खिलवाड़ चल रहा है।'

गुरुदेव कहा करते थे, 'हे मानव, गुरु के चरणों में अपने को समर्पित कर अपने जीवन का उद्देश्य उसी प्रकार प्राप्त कर जिस प्रकार स्वामी दयानन्द जी ने अपने गुरु स्वामी विरजानन्द जी महाराज के चरणों में समर्पण कर अपना उत्सर्ग किया। स्वामी विवेकानन्द जी ने जिस प्रकार अपना जीवन अपने गुरु परमहंस श्री रामकृष्ण महाराज के चरणों में समर्पित कर अपनी सभी इक्षाएं समाप्त कर, गुरु को संतोष करने वाले कष्टसाध्य कार्य में प्रवृत्त होते हुए, जन कल्याण किया। स्मरण रख श्री हनुमान जी का त्याग, जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप में सब कुछ खोकर, संत तुल्य बन, अपना जीवन श्री राम के चरणों में अर्पित कर दिया था। अपने गुरु श्री राम की कृपा और उनके बल से असाध्य कार्य जैसे समुद्र छलांगना, पर्वत उखाड़ना, लंका जलाना इत्यादि कर सकने में समर्थ हो सके। भगवान् श्री राम की कृपा होने से पहले इतना भी सामर्थ्य नहीं था कि अपने प्रिय मित्र सुग्रीव को उसके भाई बाली के अत्याचार से मुक्त करा सकें। सपर्पण ही था जिसने एकात्मा उत्पन्न कर दी। गंदे नाले में थोड़ा गंगा जल गिर पड़े, तो वह गन्दगी बन जाता है। यदि बहती हुए पवित्र गंगा में थोड़ी गन्दगी मिल जाए तो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। गन्दगी माँ गंगा के साथ से पवित्र हो जाती है।'

गुरु महत्वा बताते हुए गुरुदेव ने आगे दर्शाया, 'हे मानव, संसारी लोग क्या करते हैं, और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुहँ मोड़कर

अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के साथ आगे बढ़।
अपने को पवित्र और प्रखर बनाने के लिए तपस्चर्या में जुट जा।'

श्री गुरुदेव गुरु दीक्षा देकर शिष्य की आत्मा का श्री हरी से मिलन करा देते हैं। यहां गुरु दीक्षा की आवश्यकता एवं उसके महत्व को समझना अत्यंत आवश्यक है। दीक्षा के संबंध में गुरुगीता २/१३१ में लिखा है:

**गुरुमंत्रो मुखे यस्य तस्य सिद्धयन्ति नान्यथा ।
दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति गुरुपुत्रके ॥**

जिसके मुख में गुरुमंत्र है, उसके सब कर्म सिद्ध होते हैं, दूसरे के नहीं। दीक्षा के कारण ही गुरु परम्परा के माध्यम से शिष्य भगवान् से जुड़ जाता है।

दीक्षा का अर्थ वेदों व पुराणों में विभिन्न रूपों से हमारे महाऋषियों ने प्रदान किया है। अगर हम दीक्षा शब्द को देखें तो इसमें दो व्यंजन और दो स्वर मिले हुए हैं:

"द", "ई", "क्ष", "आ"

"द" का अर्थ है दमन। सदगुरुओं से ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात विवेक से जब संकल्पवान होकर संसार, शरीर के विषयों से निरासक्त, अपने मन को एकाग्र करके अनुकूलता का जीवन जीने का अभ्यास करते हैं, उसे दमन कहते हैं, या इन्द्रियों का निग्रह मन का निग्रह का नाम दमन है।

"ई" का अर्थ ईश्वर उपासना है। विषयातीत मानसिक बुद्धि को सदगुरु और शास्त्र के द्वारा बतायी हुई विधि के अनुसार परमात्मा में एक ही भाव से स्थिर रखने का नाम ईश्वर उपासना है।

"क्ष" का अर्थ क्षय करना है। उपासना करते करते जब हमारी मनोस्थिति परमात्मा में लीन होने लगती है, उस क्षण में जो वासना जलकर नष्ट होती है, उसे क्षय कहते हैं।

"आ" का अर्थ आनंद है। मन, बुद्धि, चित्त आदि के विषय (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह) विकारों का अवकाश जब हमारे जीवन में होने लगता है और अंतःकरण में दिव्य चेतना का प्रकाश होने लगता है, तब प्रसन्नता, समता और प्रेम प्रकट होने लगता है, उस क्षण का नाम आनंद है। जब हमारा जीव भाव, शिव भाव में परिणित होता है, उस अवस्था का नाम आनंद है, जो शब्द का नहीं अनुभव का विषय होता है।

'स्वयंभू अगम' ग्रन्थ में गुरु दीक्षा के विषय पर लिखा है ।

**यथा मर्ग पतिम द्रष्टवा भीतो याति वने गजः ।
अधिक्षीतो अर्चये लिंगं तथा भीतो महेश्वरी ॥**

जिस प्रकार हाथी वन में सिंह देखकर भयभीत हो जाता है, उसी प्रकार अदीक्षित पुरुष अथवा नारी इस भव अरण्य माया के भय से कम्पित रहता है। अर्थात् गुरु के बिना नर/ नारी का भवभय-मुक्त होना असंभव है।

**नर जन्म को हटाकर हर जन्म बना दिया गुरु ने ।
भव भय बंधन से छुड़ाकर परम सुख दिलाया गुरु ने ।**

हम मानवों के लिए मार्ग दर्शक अत्यंत आवश्यक है | यह विश्व एक उस घने जंगल के सामान है जहां ऊँचे ऊँचे वृक्षों ने सूर्यदेव के प्रकाश को पूर्ण रूप से ढक लिया है। पगडंडी दिखाई नहीं देती। ऊपर से भयावय जंगली जानवर, सर्प इत्यादि काल रूपी मुख खोले खड़े हैं। ऐसे में गुरु मार्ग दर्शति हुए, सही पगडंडी पर चलाते हुए, खाईओं से, जंगली जानवरों से रक्षा करते हुए, गंतव्य स्थान पर ले जाते हैं ।

गुरु की कृपा और उनके अमर्त बोध से मानव परम पद पाता है। इस कारण दीक्षा मानव को अनिवार्य और अति अवश्यक है।

विश्व पथ बहुत निराला है। इसे साधारणतया समझ पाना असंभव सा लगता है। ईश्वर की कृपा से ही उसकी माया को समझना संभव हो सकता है। गुरु ईश्वर का ही एक रूप और उनकी माया समझने का एक मात्र साधन है।

श्रुति कहती है कि दीक्षा के अभाव में सभी कर्म निष्फल होते है। किसी भी प्रकार का जप, तप तथा पूजा आदि गुरु दीक्षा बिना फलित नहीं होते। गुरु दीक्षा से गुरु के मार्ग दर्शन से करोड़ो जन्मों के पाप दूर हो जाते है। ऐसा उल्लेख है कि जो व्यक्ति गुरु दीक्षा लिए बिना ही मृत्यु को प्राप्त होते है उन्हें 'रौरव' नर्क की यातना भुगतनी पड़ती है। जो व्यक्ति स्वतः ही ग्रंथों में से मन्त्र देखकर मंत्र जाप करने लग जाते है, किसी को गुरु स्वीकार कर दीक्षित नहीं

होते, उनकी मन्त्र सिद्धि कभी नहीं होती, इसके विपरीत विभिन्न प्रकार की व्याधि एवं मानसिक, शारीरिक रोगों से पीड़ित होकर अनेक जन्मों तक अन्यन्य प्रकार के नर्कों में यातनाएं पाते रहते हैं।

सनातन समय से ही श्री गुरुदेव द्वारा गायत्री मन्त्र से दीक्षित करने की प्रथा रही है। श्री गुरुदेव का उद्देश्य सर्वप्रथम अपने शिष्य को सांसारिक कष्टों से छुटकारा दिलाकर शान्ति की अनुभूति कराना है। श्री गुरुदेव जानते हैं कि इसके लिए बुद्धि का शुद्ध होना एवं प्रवर्तियों का सात्विक होना अत्यंत आवश्यक है। बुद्धि शुद्ध होने पर आत्म विकास की प्रेरणा जागती है, तथा शिष्य लौकिक एवं परलौकिक असीम सुखों को भोगने का अधिकारी बनता है।

गायत्री मन्त्र ऐसा ही सद्बुद्धि प्रदाता, प्रेरणादायक और मानव कल्याणकारी मन्त्र है। यह मन्त्र व्यक्तिगत और सामाजिक, सभी उच्च जीवन मूल्यों को ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। संक्षेप में, यह मन्त्र मानव मात्र का सम्पूर्ण जीवन है।

अथर्व वेद १९/७१/१ में गायत्री मन्त्र के बारे में उल्लेख है :

ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्,
महां दत्तवा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

मैंने इष्टफल देनेवाली वेदमाता गायत्री का स्तवन अर्थात् अध्ययन कर लिया है। हे गुरुजनो, इस का मुझे और प्रवचन कीजिये।

द्विजन्मों एवं द्विजों को यह वेदमाता पवित्र करती है। स्वस्थ और दीर्घ आयु, प्राणविद्या, उत्तम सन्तानों, पशुपालन, पुण्य और यश, धनोपार्जन विद्या, ब्रह्म के तेजस्वरूप का परिज्ञान व इनका सदुपदेश मुझे देकर, हे गुरुजनों, आलोकमय ब्रह्म तक मुझे पहुंचाइये।

गायत्री मन्त्र की अनुभूति सम्राट विश्वरथ को उनकी साधना की अवधि में हुई थी। साधना में उन्हें एक तीव्र प्रकाश का भाव हुआ जिसका स्थान शीघ्र ही एक देवी की आकृति ने ले लिया। उस देवी के पाँच सिर थे, जो भिन्न दिशाओं में देख रहे थे। उस देवी के दस हाथों में त्रिदेव के पास रहने वाले सभी अस्त्र थे। देवी शक्ति के दर्शन करते ही, सम्राट विश्वरथ बैठकर नतमस्तक हुए, और स्वतः ही उनके मुख से संस्कृत का एक श्लोक निकल पड़ा:

**ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं ।
भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।**

हे तीनों लोकों की स्वामिन, मैं आपके प्रकाशमान रूप का ध्यान करता हूँ। आपका ये रूप मेरी बुद्धि को सदैव सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे।

इससे पहले कि हम इस गायत्री महामंत्र के महात्म्य, जपविधि और लाभ इत्यादि के बारे में चर्चा करें, चलिए जानें कि यह सम्राट विश्वरथ कौन थे, जिनको माँ गायत्री ने सर्व प्रथम गायत्री मन्त्र की दीक्षा दी। इसके पश्चात ब्रह्मदेव ने उन्हें ब्रह्मऋषि विश्वामित्र की उपाधि से विभूषित किया।

ब्रह्मऋषि विश्वामित्र

पारवारिक परिचय

सतयुग काल में कान्यकुब्ज (आधुनिक कन्नौज) देश के महाप्रतापी चक्रवर्ती सम्राट गाधि अब वृद्ध हो चुके थे। प्रजापति के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट कुश, इनके पुत्र सम्राट कुशनाभ और इनके पुत्र सम्राट गाधि थे। सम्राट गाधि के हृदय में वैराग्य भावना दिन प्रतिदिन प्रगढ़ होती चली जा रही थी। अतः एक दिन उन्होंने अपने पुत्र राजकुमार विश्वरथ (महर्षि विश्वामित्र का जन्म नाम) को राज-पाट सौंप वाणप्रस्थ साधना हेतु वन में प्रस्थान करने का निश्चय किया। राजकुमार विश्वरथ एक कुशल सम्राट के समस्त गुणों से युक्त थे, फिर भी सम्राट गाधि ने उन्हें एक वर्ष के लिए अपनी देख रेख में शासन संभालने का आदेश दिया। राजकुमार विश्वरथ ने तब अपने पिता गाधि के मार्गदर्शन में एक वर्ष तक शासन किया। उनकी प्रशासन कौशलता से आश्वासित सम्राट गाधि तब पूर्णतः साम्राज्य राजकुमार विश्वरथ को सौंप वन चले गए। इसी मध्य साम्राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए राजकुमार विश्वरथ ने तीन भिन्न, परन्तु अत्यंत शक्तिशाली देशों की राजकुमारीओं से विवाह किया - काशी की राजकुमारी शालवती, मगध की राजकुमारी रेणुमति, तथा मत्स्य देश की राजकुमारी वृष्टती।

पिता सम्राट गाधि अति विनम्र एवं संतुष्टि प्रकृति के शासक थे। उन्होंने अपने सभी पड़ोसी देशों से मित्रता पूर्वक सम्बन्ध रखे, तथा उनके राज्यों को अपने राज्य में विलय करने की कभी कोई इक्षा प्रदर्शित नहीं की। इसके विपरीत सम्राट विश्वरथ अत्यंत

महत्त्वाकांक्षी शासक थे। उन्होंने शासन की बागडोर अपने हाथ में लेते ही अपने साम्राज्य विस्तार की योजना को फलीभूत करना प्रारम्भ कर दिया। एक अत्यंत शक्तिशाली सेना सृजित की, तथा युद्ध में आस पास के समस्त राजाओं को हरा कर उनके राज्यों को अपने राज्य में विलय कर चक्रवर्ती सम्राट होने के अपने स्वप्न को साकार करने लगे।

कामधेनु गौ हरण प्रयास

विश्वविजय करते हुए एक बार सम्राट विश्वरथ की सेना महर्षि वशिष्ठ जी के आश्रम के समीप पहुँची। वहाँ का दृश्य देखकर वह आश्चर्यचकित हो गए। एक स्थान पर सर्प और नेवला धूप में बैठे थे, और दोनों ही एक दूसरे की उपस्थिति से निडर थे। थोड़ी दूरी पर हिरणों का एक दल आनंद से हरी दूब घास को चर रहा था, और उनके बीच एक श्वेत तेंदुआ भी आराम से लेटा हुआ था। हिरणों में भय का और तेंदुए में आक्रमण की इच्छा का अभाव देखकर तथा एक दूसरे के प्रगाढ़ शत्रु सर्प और नेवले को एक साथ देखकर सम्राट विश्वरथ हैरान रह गए। कुछ ही क्षणों में भगवा वस्तु धारी दो लड़के सम्राट के समीप पहुंचे। अभिवादन कर उन्होंने प्रार्थना की कि हे राजन आप महर्षि वशिष्ठ के आश्रम की सीमा में प्रवेश कर रहे हैं। इस पवित्र वन में अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होना निषेध है। अतः आपसे विनम्र निवेदन है कि आप आश्रम में अपने अस्त्रों के बिना ही प्रवेश करें। इन बालकों के चहरे से एक अद्भुत प्रकाश की अनुभूति हो रही थी। सम्राट स्वतः ही उन बालकों के निर्देश मानने को विवश हो गए। अस्त्र शस्त्र एक सेवक को दिए और उन बालकों के साथ आश्रम की ओर मुड़े। बालकों को विनम्र भाव से अपना परिचय कराया, तथा महर्षि वशिष्ठ से मिलने की इक्षा प्रदर्शित की। दोनों बालक तीव्र गति से आश्रम की ओर दौड़े, ऋषिवर को सन्देश देने के लिए।

शीघ्र ही उन बालकों के साथ एक बलिष्ठ काया वाला युवक उपस्थित हुआ, और उसने सम्राट विश्वरथ का अभिवादन कर अपना परिचय दिया, और आश्रम में आथित्य स्वीकार का निमंत्रण

दिया। यह ब्रह्मर्षि वशिष्ठ एवं माता अरुंधती के ज्येष्ठ पुत्र शक्ति थे। ऋषिपुत्र शक्ति के साथ तब सम्राट विश्वरथ ने महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में प्रवेश किया।

उस समय महर्षि वशिष्ठ ईश्वर भक्ति में लीन होकर यज्ञ कर रहे थे। सम्राट विश्वरथ उन्हें प्रणाम कर वहीं बैठ गए। यज्ञ क्रिया से निवृत्त होकर महर्षि वशिष्ठ ने सम्राट विश्वरथ का हृदय से आदर सत्कार किया, और उनसे कुछ दिन आश्रम में ही रह कर उनकी सेना समेत आतिथ्य ग्रहण करने का अनुरोध किया। इस पर सम्राट विश्वरथ विचार करने लगे कि उनकी विशाल सेना साथ में है। सेना सहित मेरा आतिथ्य करने में महर्षि वशिष्ठ जी को अत्यंत कष्ट होगा, अतः सम्राट विश्वरथ ने नम्रता पूर्वक प्रस्थान की अनुमति माँगी। किन्तु महर्षि वशिष्ठ जी के अत्यधिक अनुरोध पर थोड़े दिनों के लिये उन्होंने उनका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। महर्षि वशिष्ठ जी ने गौ माता कामधेनु का आह्वान किया। माँ की अनुकम्पा से तुरंत सम्राट विश्वरथ तथा उनकी सेना के लिये छः प्रकार के व्यंजन तैयार हुए एवं साथ ही समस्त प्रकार के सुख-सुविधा की व्यवस्था हुई। महर्षि वशिष्ठ जी के आतिथ्य से सम्राट विश्वरथ और उनके साथ आई समस्त सेना अत्यंत प्रसन्न हुई।

गौ माता कामधेनु का चमत्कार देखकर सम्राट विश्वरथ विस्मित हो गए। उन्होंने गौ माता को प्राप्त करने के विचार से महर्षि वशिष्ठ जी से कहा, "मुनिवर, कामधेनु जैसी गौ वनवासियों के पास नहीं, सम्राटों के पास शोभा देती हैं, अतः आप इसे मुझे दे दीजिये। इसके बदले में मैं आपको सहस्रों स्वर्ण मुद्रायें दे सकता हूँ।" इस पर

महर्षि वशिष्ठ जी बोले, "राजन! यह गौ मेरा जीवन है, मेरी माँ है। अपनी माँ को मैं कैसे बेच सकता हूँ?"

महर्षि वशिष्ठ के उत्तर से सम्राट विश्वरथ संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने कहा, 'यह गाय चूँकि मेरे राज्य में रहती है, और साम्राज्य की हर वस्तु पर सम्राट का अधिकार होता है, अतः आपकी विनती का कोई महत्त्व नहीं है। मैं यह घोषणा करता हूँ कि यह दिव्य गाय अब राजा की संपत्ति है, और मैं अपने सैनिकों को इसे कान्यकुब्ज ले चलने का आदेश देता हूँ।'

अपने सम्राट का आदेश सुन उनके सैनिक गौ माँ को पकड़ने का प्रयास करने लगे। गौ माँ कामधेनु ने किसी प्रकार उन सैनिकों से अपना बन्धन छुड़ा लिया, और महर्षि वशिष्ठ के पास आकर विलाप करने लगीं। महर्षि वशिष्ठ बोले, "हे गौ माँ, सम्राट विश्वरथ मेरे अतिथि हैं। इन्हें मैं श्राप भी नहीं दे सकता, और इनकी विशाल सेना से विजय भी प्राप्त नहीं कर सकता। मैं स्वयं को विवश अनुभव कर रहा हूँ।" उनके इन वचनों को सुन कर गौ माँ कामधेनु ने कहा, "हे ब्रह्मर्षि, एक ब्राह्मण के बल के सामने क्षत्रिय का बल कभी श्रेष्ठ नहीं हो सकता, आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं एक क्षण में इस क्षत्रिय राजा को उसकी विशाल सेना सहित नष्ट कर दूँगी।" कोई उपाय न देख कर महर्षि वशिष्ठ जी ने गौ माँ कामधेनु को सम्राट विश्वरथ से युद्ध की अनुमति दे दी।

अनुमति पाते ही गौ माँ कामधेनु ने योगबल से पल्लव सैनिकों की एक सेना उत्पन्न कर दी। वह सेना सम्राट विश्वरथ की सेना के साथ युद्ध करने लगी। सम्राट विश्वरथ ने अपने पराक्रम से समस्त पल्लव

सेना का विनाश कर डाला। अपनी सेना का विनाश होते देखकर गौ माँ कामधेनु ने सहस्रों शक, हूण, बर्बर, यवन और काम्बोज सैनिक उत्पन्न कर दिये। सम्राट विश्वरथ ने उन सैनिकों का भी वध कर डाला। तब गौ माँ कामधेनु ने अत्यंत पराक्रमी मारक शस्त्रास्त्रों से युक्त पराक्रमी योद्धाओं को उत्पन्न किया, जिन्होंने शीघ्र ही शत्रु सेना को गाजर मूली की भाँति काटना आरम्भ कर दिया। अपनी सेना का विनाश होते देख सम्राट विश्वरथ के पुत्र अत्यन्त कुपित हो महर्षि वशिष्ठ जी को मारने दौड़े। महर्षि वशिष्ठ जी ने उनमें से एक पुत्र को छोड़ कर शेष सभी को भस्म कर दिया। अपनी सेना तथा पुत्रों के नष्ट हो जाने से सम्राट विश्वरथ बड़े दुःखी हुए, और युद्ध में हार स्वीकार कर अपनी राजधानी लौट आए।

दसराज युद्ध

माँ कामधेनु गौ द्वारा अपने पुत्रों एवं सेना का विनाश होने के बाद पराजित हो महर्षि वशिष्ठ से प्रतिशोध की भावना हृदय में धारण कर वह अपने राज्य कान्यकुब्ज पहुंचे। महर्षि वशिष्ठ से प्रतिशोध लेने का बस एक ही उपाय था, किसी भी प्रकार दैवीय शक्तियों की प्राप्ति। अपने पुरोहित को बुलाया और आज्ञा दी, देवताओं को प्रसन्न करने के लिए एक महान यज्ञ अनुष्ठान की तैयार करने की।

राज पुरोहित ने राज्य भर से तथा नवाधीन राज्यों के ऋषि-मुनियों को यज्ञ में आमंत्रित किया। राजमहल के उद्यान के ठीक बाहर वाली भूमि को रिक्त कर यज्ञ अनुष्ठान के लिए विशाल तैयारी की गई। यज्ञ में दिन रात मंत्रोच्चारण करने वाले एक सौ एक ऋषियों के बैठने हेतु आसन की व्यवस्था की गई थी। आचार्य धनु को यज्ञ प्रमुख नियुक्त किया गया। हविष्य के लिए कर्पूर, ताजे फल, सुपारी, केसर, गेंदे के फूल, आम के पत्ते, नारियल, केले की डाल, घृत, दूध तथा गंगाजल के विशाल भंडार की व्यवस्था की गई थी, ताकि इनमें से किसी सामग्री के अभाव में यज्ञ बाधित न हो जाए।

यज्ञ प्रारम्भ हुआ और ४५ दिन तक चलता रहा। पैंतालीसवें दिन प्रातः जब यज्ञ प्रारम्भ होने वाला था तो सम्राट विश्वरथ को आभास हुआ कि आज उस महान यज्ञ की समाप्ति हो जाएगी, और उन्हें दैवीय अस्त्र शस्त्र मिल जाएंगे। दिन का जैसे ही प्रथम प्रहर बीता तो यज्ञ-वेदी का तापमान गिरने लगा। ऐसा लगा मानो यज्ञ की अग्नि आस पास की ऊर्जा को अपने अंदर खींच रही थी। पूरे नगर में मौन व्याप्त था तथा घने बादलों ने सूर्य को ढँक लिया था। यज्ञ का

उद्यान जो पक्षियों के कलरव से गूँजता रहता था, सहसा निर्जीव प्रतीत हो रहा था। यज्ञ में उपस्थित सम्राट विश्वरथ एवं अन्य ऋषि समझ चुके थे कि यह किसी विस्मयकारी घटना के संकेत थे। आचार्य ने ज्यों ही उस प्रहर की अंतिम आहुति दी, यज्ञवेदी से एक अग्नि-शिखा निकली और आकाश की ओर बढ़ चली। कुछ ही क्षणों में वह अग्नि-शिखा शुद्ध ऊर्जा के स्तंभ में परिवर्तित हो गई। वह ऊर्जा-स्तंभ ऊँचा उठता चला गया और आकाश तक जा पहुँचा। ऊर्जा-स्तंभ से नीले रंग का प्रकाश निकल रहा था और वह स्तंभ विद्युत से ऊर्जान्वित प्रतीत हो रहा था। अग्निशिखा जैसे जैसे बढ़ी होती गई, संपूर्ण स्थान अंधकार में डूब गया। अब वहाँ केवल यज्ञ वेदी में जलते अंगारे और उससे निकल रही श्वेत ज्वाला दिखाई पड़ रही थी। तब अग्नि-स्तंभ से एक विशाल आकृति प्रगट हुई। 'मैं अग्नि हूँ। इंद्र देव तुम्हारी आहुति से प्रसन्न हैं, और उन्होंने मुझे तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के लिए भेजा है।' सम्राट विश्वरथ खड़े हो गए तथा उन्होंने अग्निदेव को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। अग्नि देव फिर बोले, 'सम्राट विश्वरथ, देवताओं द्वारा दी भेंट को स्वीकार करो।' सम्राट विश्वरथ को जैसे अपने स्वर पर विश्वास ही नहीं हो रहा था, इसलिए उन्होंने बिना उत्तर दिए आदेशानुसार अपने हाथ बढ़ा दिए। अग्निदेव ने तब उन्हें दिव्यास्त्र समर्पित किए।

अग्नि देव आगे बोले, 'देव जानते हैं कि तुमने दिव्यास्त्रों की कामना की है, अतः देव तुमसे प्रसन्न होकर उदारतावश अपने अस्त्र तुम्हें दे रहे हैं। सबसे पहले यह वायुवास्त्र है। इससे इतनी तीव्र गति से वायु का प्रवाह होना संभव है जिससे शत्रुओं द्वारा निर्मित अस्त्र कुछ ही क्षणों में ध्वस्त हो जाएंगे। यह दूसरा ऐशिक अस्त्र है। यह संपूर्ण राज्य को शीशे की तरह पिघला सकता है। अब मैं तुम्हें

वरुणास्त्र दे रहा हूँ, जो तुम्हारे शत्रुओं को मूसलाधार वर्षा में डुबो सकता है। यह मरुतास्त्र है, जो हरे-भरे वनों को एक क्षण में मरुस्थल में बदल सकता है। मैं तुम्हें यमराज का कालचक्र अस्त्र भी दे रहा हूँ। यह समय की गति रोकने में समर्थ है। समय को रोकने से तुम्हारे शत्रु स्थिर हो जाएँगे, और तुम उन्हें एक एक कर के आसानी से मार सकते हो। अब कपालम एवं कंकालम नाम के ये दो अस्त्र भी ग्रहण करो। इनसे तुम यक्ष, असुर, उरग, नाग तथा गरुड़ जैसे अलौकिक प्राणियों को भी मार सकते हो। यह मोहन अस्त्र है, जो शत्रु को जड़ कर देता है। यह प्रस्वपन अस्त्र है, जो शत्रु को सुला देता है। विलापन अस्त्र को भी स्वीकार करो, जो शत्रुओं में हृदय विदारक दुख उत्पन्न करता है। अब इस पैशाचास्त्र को लो, जो तुम्हारे शत्रु के तन से रक्त खींच लेगा। यह तामस अस्त्र लो, जो दहकती हुई धूप में भी अंधकार पैदा कर सकता है। मैं तुम्हें चंद्रदेव का शिशिर अस्त्र देता हूँ, जो शत्रु को सर्दी से कँपा देगा। यह सूर्यदेव का अस्त्र तेजप्रभा है, जो किसी भी प्राणी को पिघलाकर नष्ट कर सकता है। इन दिव्यास्त्रों के साथ यह रथ भी स्वीकार करो, जो बिना अश्वों के अनंतकाल तक दौड़ सकता था। और अब मैं तुम्हें सबसे भयंकर अस्त्र दे रहा हूँ जो एक क्षण में हवा में छत्र के समान बादल बना सकता है, समुद्र में बाढ़ ला सकता है, भूमि में विशाल गड्ढा कर सकता है तथा अपने प्रहार से कई योजन दूर तक प्रत्येक वस्तु का नाश कर सकता है। यह तुम्हारे शत्रुओं के नगर नष्ट करके अनेक वर्षों के लिए उस स्थान को विषाक्त कर सकता है, जिससे वहाँ कुछ नहीं उग सकता। यह जीवन के मूलभूत अंगों को परिवर्तित करके पौधों, पशुओं तथा मनुष्यों में अत्यंत कष्टदायक बदलाव ला सकता है। यह भयंकर ब्रह्मशिरास्त्र अब तुम्हारे आदेश का पालन करेगा। याद रहे मनु-पुत्र, तुम्हें इन

दिव्यास्त्रों का प्रयोग केवल ऐसे शत्रु पर करना चाहिए जिसमें तुमसे टकराने का साहस और क्षमता हो अथवा जो तुम्हारे राज्य पर आक्रमण करे। परंतु यदि तुमने इनका प्रयोग निर्दोष लोगों पर किया तो ये पलटकर तुम्हें ही नष्ट कर देंगे। शक्ति के साथ उत्तरदायित्व भी मिलता है। इस बात को कभी मत भूलना।' इन्हीं सब दिव्यास्त्रों को देकर अग्नि देव यज्ञ की अग्नि कुंड में अंतर्धान हो गए।

इन दिव्यास्त्रों को पा सम्राट विश्वरथ प्रसन्न थे। उन्हें लगा कि वह अब आसानी से महर्षि वशिष्ठ को पाठ सिखा देंगे, और अपना प्रतिशोध ले पाएंगे।

'इन दिव्यास्त्रों को उपयोग केवल शत्रु के साथ युद्ध में ही किया जा सकता है', यह अग्निदेव के शब्द उनके कानों में गूँजने लगे। इन दिव्यास्त्रों से वह महर्षि वशिष्ठ को अकेले कोई व्यक्तिगत हानि नहीं पहुंचा सकते। अतः कोई ऐसा रास्ता ढूँढना आवश्यक है ताकि महर्षि वशिष्ठ के साथ युद्ध संभव हो सके।

ऐसा विचार उनके हृदय में आया ही था कि तुरंत इसका समाधान उन्हें मिल गया।

महर्षि वशिष्ठ हस्ति के सूर्यवंशी सम्राट सुदास के संरक्षक एवं गुरु थे। सम्राट सुदास से सम्राट विश्वरथ की भी व्यक्तिगत शत्रुता थी। जब वह राजकुमार विश्वरथ थे, और दस्यु राजकुमारी उग्रा से उन्होंने विवाह किया था तो आर्य सम्राट के सेनापति ने सम्राट

सुदास के आदेश पर ही उग्रा की हत्या कर दी थी। अब समय आ गया है कि सम्राट सुदास से भी प्रतिशोध लिया जाय।

सम्राट विश्वरथ ने भारतवर्ष के ऐसे दस राजाओं को एकत्रित किया जो महर्षि वशिष्ठ अथवा उनसे संरक्षित हस्ति सम्राट सुदास से किन्हीं न किन्हीं कारणों से रुष्ट थे - दस्यु सम्राट भेदा, सम्राट नूरी (आधुनिक अफगानिस्तान का भाग) सम्राट अलीन, सम्राट परुष्णि (आधुनिक रावी नदी घाटी) सम्राट अनु, बेताब घाटी सम्राट एवं महर्षि भृगु के वंशज ऋषि भृगु, बोलन दर्रा सम्राट भालन, गान्धार सम्राट द्रुह्यु, शाल्व सम्राट मत्स्य, पार्थीआ (आधुनिक ईरान) सम्राट परसु, सरस्वती नदी घाटी सम्राट पुरु एवं स्किथी सम्राट पणि।

सम्राट सुदास एवं उनके संरक्षक महर्षि वशिष्ठ जी के विरुद्ध एक भीषण महायुद्ध की घोषणा कर दी गई। रावी नदी तट के एक स्थान को इस युद्ध के लिए चुना गया।

सम्राट सुदास इस युद्ध की घोषणा से विचलित हो गए। गुप्तचरों ने बताया कि इन दस राज्यों के समूह के पास अतुलित बलशाली ६६,००० पैदल संयुक्त सेना, २०० रथ, २,००० घुड़सवार और ५० हाथियों की सेना है, जबकि सम्राट सुदास के पास केवल ६,५०० पैदल सेना थी। सम्राट सुदास के पास गिने चुने युद्ध में प्रशिक्षित घोड़े एवं हाथी थे। महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें सांत्वना दी और ज्ञान दिया, 'सत्यमेव जयते'। महर्षि वशिष्ठ ने बतलाया कि हमारे किसी भी प्रकार के उकसाने के बिना यह युद्ध हम पर थोपा जा रहा है। सम्राट सुदास आप क्षत्रिय हैं, इस से भाग नहीं सकते। आप निश्चित इस युद्ध का संचालन मुझे करने दीजिए, विजय अवश्य ही आपकी

होगी। महर्षि वशिष्ठ जी को युद्ध संचालन का नेतृत्व दे, सम्राट सुदास युद्ध की तैयारी में लग गए।

महर्षि वशिष्ठ जी के सामने दो समस्याएं थी, अगर युद्ध में सम्राट विश्वरथ दैविक अस्त्रों का प्रयोग करते हैं तो उसका उत्तर देना उन्हें भली भांति आता है। महर्षि अगस्त के भ्राता महर्षि वशिष्ठ जी को स्वयं ब्रह्मदेव एवं भगवान् विष्णु ने समस्त प्रकार के दैविक अस्त्रों की काट उन्हें बता रखी थी। उन्हें लगता था कि इसका भान अवश्य ही सम्राट विश्वरथ को है, और संभवतः वह दैविक अस्त्रों का प्रयोग नहीं करेंगे। अगर उन्होंने पारम्परिक अस्त्रों से युद्ध किया तो महर्षि वशिष्ठ के लिए यह अनीति होगी कि वह दैविक अस्त्रों का उपयोग करें। ऐसे में सम्राट विश्वरथ द्वारा संरक्षित एवं नेतृत्व प्राप्ति की हुई इन दस राजाओं की इतनी विशाल सेना, लगभग सम्राट सुदास से दस गुनी, का सामना कैसे किया जा सकता है? उन्हें तब महर्षि कुर्तुक का विचार आया, और उन्होंने तुरंत अपने एक शिष्य को महर्षि कुर्तुक के आश्रम कुर्तुक लद्दाख को इस युद्ध में आमंत्रण देते हुई भेजा।

महर्षि वशिष्ठ जानते थे कि इन दस राजाओं की सेना के पास पारम्परिक लकड़ी और पत्थर के बने हथियार हैं। महर्षि कुर्तुक ने लोहे से बने युद्ध हथियार, भाले, तलवार एवं तीरों का अन्वेषण किया था। इन लोहे के बने हथियारों की मार शत्रु सेना पर असहनीय होगी, और वह विचलित हो जाएगी।

महर्षि कुर्तुक महर्षि वशिष्ठ जी के एक प्रतिभावान शिष्य थे। उनकी प्रतिभा से प्रभावित महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें 'महर्षि' की उपाधि से

विभूषित किया था, और उनको अपना स्वतंत्र आश्रम लद्दाख में स्थापित करने की अनुमति दी थी। लद्दाख में हिमालय की सुन्दर घाटीओं में उन्होंने अपना आश्रम स्थापित किया जो कुर्तुक के नाम से जाना जाता था।

महर्षि वशिष्ठ का सन्देश सुन महर्षि कुर्तुक ने तुरंत हस्ति प्रस्थान की तैयारी करना प्रारम्भ कर दिया। उन्हें पता था कि महर्षि वशिष्ठ को इस युद्ध में भाग लेने के लिए उनके द्वारा अन्वेषित लोहे के हथियारों की आवश्यकता होगी, अतः उन्होंने जो भी उस समय लोहे के हथियार, तीर, भाले एवं तलवार आदि उपलब्ध थे, उनके साथ यात्रा की योजना बनाई। पुत्री कुर्तकी को साथ लिया। अत्यंत प्रतिभाशाली, कुशाग्र बुद्धि की कुर्तकी ने अपने पिता के साथ इन अस्त्रों का अन्वेषण किया था और वह इनको प्रयोग में लाने की कला में अत्यंत माहिर थीं।

महर्षि कुर्तुक हस्ति पहुंचे और अपने गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ को साष्टांग प्रणाम कर मिले। तब उन्होंने अपनी पुत्री कुर्तकी का परिचय भी महर्षि वशिष्ठ जी से कराया। अपने लोहे से बने हथियार महर्षि वशिष्ठ जी के सम्मुख रख दिए। इन हथियारों की संख्या बहुत कम थी, अतः यह आवश्यक था कि इनकी संख्या में वृद्धि की जाए। महर्षि वशिष्ठ जी के आदेश पर तुरंत पूरे राज्य के लोहार उपस्थित हुए और उन्हें महर्षि कुर्तुक एवं उनकी पुत्री कुर्तकी के निर्देश में हथियार बनाने की आज्ञा दी गई। लोहारों की दिन रात की मेहनत से कुछ ही समय में हथियारों का भण्डार निर्मित हो गया।

निर्धारित समय पर सम्राट सुदास की सेना रावी नदी के तट युद्ध स्थल पर पहुँची और वहाँ एक स्वच्छ स्थान पर अपना पड़ाव डाला। महर्षि वशिष्ठ ने महर्षि कुर्तुक को सम्राट सुदास की ओर से सेनापति का भार संभालने का अनुरोध किया। महर्षि वशिष्ठ जी की आज्ञा सिर पर धारण कर पिता महर्षि कुर्तुक एवं पुत्री कुर्तकी इस युद्ध की योजना में लग गए और व्यूह रचना प्रारम्भ की।

इधर सम्राट विश्वरथ ने अपनी सेना का नेतृत्व करने के लिए सम्राट अनु का चयन किया। परुष्णि सम्राट अनु, इसी रावी नदी क्षेत्र के सम्राट थे और उन्हें युद्ध कला का विशेषज्ञ माना जाता था। रात्रि के द्वितीय पक्ष तक शिविर में सभी सम्राटों के साथ सम्राट विश्वरथ रण नीति पर विचार विमर्श करते रहे। तत्पश्चात, 'अगला दिन बहुत भयंकर होने वाला है, अब तुम सब लोग भी थोड़ा विश्राम कर लो', ऐसा कहकर सम्राट विश्वरथ विश्राम के लिए अपने शिविर में चले गए।

सम्राट विश्वरथ अपने शिविर में अपनी शैया पर लेटे सोने का प्रयास कर रहे थे। निद्रादेवी आने का नाम ही नहीं ले रहीं थीं। पुरानी स्मृतियाँ उनके मस्तिष्क पर बुरी तरह छा रहीं थीं। महर्षि वशिष्ठ से पराजय का अपमान उन्हें रह रह कर क्रोधित और ग्लानि की अनुभूति करा रहा था। कल बस मैं अपने सारे अपमान का प्रतिशोध लूंगा, यह सोच कर एक अत्यंत सुखद अनुभूति हुई। मेरे पास ६६,००० सशस्त्र सेना बल है जबकि सम्राट सुदास के बाद केवल ६,५००। मुख पर प्रसन्नता छा गई। कल गाजर मूली की तरह मैं उनकी सेना को कुचल दूंगा। साथ में सम्राट सुदास को भी वीरगति प्रदान करूंगा। लेकिन महर्षि वशिष्ठ को वीरगति? नहीं,

नहीं। मेरा उद्देश्य उन्हें वीरगति देना नहीं, बल्कि उनको बंदी बना कर अपने अपमान का बदला लेना है, और उनसे कामधेनु गौ को लेना है। मैंने सेनापति सम्राट अनु एवं सभी अपनी सेना में सम्मिलित सम्राटों को आदेश दे ही दिया है कि वह महर्षि वशिष्ठ को किसी भी प्रकार की शारीरिक हानि न पहुंचाएं, बल्कि बंदी बना कर मेरे सम्मुख उपस्थित करें। तभी नींद का एक झोंका आ गया। देखा ब्रह्मदेव उनके सामने खड़े हैं। कुछ क्रोधित मुद्रा में लग रहे हैं। 'हे विश्वरथ कल के युद्ध में किसी प्रकार भी दैविक अस्त्रों का उपयोग न करना। अगर तुमने ऐसा किया तो वशिष्ठ इसका भयंकर प्रत्युत्तर देंगे जो पूरी सृष्टि के लिए विनाशकारी होगा। ऐसा हुआ तो मैं तुम्हें भयंकर श्राप दूंगा।' ब्रह्मदेव के यह कठोर शब्द सुन हड़बड़ा कर उठ गए सम्राट विश्वरथ।

इधर रात्रि के पहले पहर में महर्षि वशिष्ठ के शिविर में महर्षि वशिष्ठ, सम्राट सुदास, सेनापति महर्षि कुर्तुक और कुर्तकी रण नीति पर विचार विमर्श कर रहे थे। महर्षि वशिष्ठ बोले, 'सम्राट विश्वरथ के दस सम्राटों की सेना में हमसे दस गुना दल बल है। हम सीधी लड़ाई में उनसे विजय प्राप्त करने में असमर्थ हैं। हमें सोच समझ कर रण-नीति बनानी होगी।' तभी कुर्तकी के चेहरे पर मुस्कान आ गयी। 'अवश्य महर्षि। यह युद्ध सत्य पर थोपा गया असत्य का उदाहरण है। हर प्रकार से, साम, दाम, दंड, भेद, और आवश्यक हुआ तो छल भी, कोई भी नीति उपयोग की जाए, विजय अवश्य प्राप्त करनी है।' बोलीं कुर्तकी। 'अवश्य पुत्री, लेकिन तुम्हारे मस्तिष्क में क्या चल रहा है?' पिता महर्षि कुर्तुक ने उत्सुकतापूर्वक पूछा। तब कुर्तकी ने अपनी पूरी रण-नीति को सम्मुख रक्खा।

'नियमित युद्ध क्षेत्र से २ मील की दूरी पर रावी नदी के तट पर ही एक विशाल पर्वत श्रृंखला है। इसमें प्रवेश करने के लिए एक संकरे मार्ग से जाना पड़ता है। हमारे सैनिक अपने आधुनिक लोहे के बने हथियारों, तीर, भाले एवं तलवारों आदि से युक्त इस पर्वत श्रृंखला की ऊंचाई पर तैनात होंगे। हमारे दो सौ घुड़सवार शत्रु की सेना के पास पहुँच उन पर आक्रमण करने का अभिनय करेंगे। लेकिन जैसे ही शत्रु की सेना उन पर आक्रमण करेगी वैसे ही रण भूमि छोड़ वह घुड़सवार हमारे सैनिक इस घाटी की पर्वत श्रृंखला की ओर भागेंगे। शत्रु की सेना को समझने का अवसर ही नहीं मिलेगा कि हमारी योजना क्या हो सकती है, अतः वह युद्ध के इस वातावरण में प्रतिशोध के लिए इन हमारे सैनिकों को मारने के लिए उनका पीछा करेंगे। हमारे सैनिक इस संकीर्ण मार्ग से जैसे ही पारित हो जाएंगे और शत्रु सैनिक जैसे ही प्रवेश करने का प्रयास करेंगे, हमारे सैनिक अपने आधुनिक हथियारों से उन पर पर्वत की ऊंची श्रृंखला से हमला बोल देंगे। अवश्य ही शत्रु सेना की इस से बहुत बड़ी क्षति होगी, और ऐसी आशा है कि वह निराश होकर अपनी सेना का इस प्रकार संहार देख हताश हो जाएंगे, और रण भूमि छोड़ भागने लगेंगे। अगर वह भागने लगे तो फिर उनको एकत्रित करना बहुत कठिन होगा, और संभवतः हमारी विजय होगी।' अपनी योजना कुर्तकी ने स्पष्ट की।

'साधुवाद, साधुवाद' शब्दों के साथ महर्षि वशिष्ठ की करतल ध्वनि के साथ शिविर गूँज उठा।

'थोड़ा सा छल अवश्य है इस योजना में, लेकिन युद्ध और प्रेम में विजय हेतु सब उचित है। पुत्री, अपनी योजना को कार्यान्वित करो,

मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। हाँ, अगर सम्राट विश्वरथ ने किसी भी प्रकार के दैविक अस्त्रों का उपयोग किया तो वह मुझ पर छोड़ दो। मैं उसका उपयुक्त प्रत्युत्तर देने में समर्थ हूँ, और प्रण करता हूँ कि उस से हमारी सेना को कोई क्षति नहीं होगी,' बोले महर्षि वशिष्ठ। इस प्रकार हुआ विश्व में प्रथम 'छापामार युद्ध' योजना का प्रारम्भ।

सब की सहमति और आशीर्वाद प्राप्त करने के तुरंत बाद, रात्रि के दूसरे पहर में ही कुर्तकी ने अपनी सेना की विभिन्न टुकड़ियों के प्रमुखों को बुलाया और पूरी युद्ध योजना से अवगत कराया। रात्रि के चतुर्थ पहर तक सभी सैनिक अपने अपने स्थानों पर हथियारों से युक्त तैनात हो गए।

अगले दिन एक भीषण युद्ध के प्रारम्भ की कल्पना लिए सम्राट विश्वरथ द्वारा संगठित सम्राट अनु के सैन्य नेतृत्व में शत्रु सेना निर्धारित युद्ध स्थल पर आ खड़ी हुई। शत्रु की सेना एक समुद्र के सैलाब की तरह लग रही थी, जिस का कोई अंत ही दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था।

योजना के अनुसार सम्राट सुदास के दो सौ घुड़सवार युद्ध की इक्षा लिए सम्राट अनु की सेना के समक्ष आ गए। लेकिन जैसे ही सम्राट अनु ने 'आक्रमण' शब्द से अपनी सेना को प्रोत्साहित करते हुई युद्ध की घोषणा की, यह घुड़सवार युद्ध छोड़ भागने लगे। इस प्रकार इनके युद्ध छोड़ भागने से, इस से पहले कि सैन्य अधिकारी इसके पीछे छिपी किसी योजना का आभास कर सकते, शत्रु सेना में प्रसन्नता की लहर जाग उठी। इसे उन्होंने अपनी विजय का एक

संकेत समझा और दौड़ पड़े इन घुड़सवारों को पकड़ उन्हें वीरगति पहुंचाने को। यही तो कुर्तकी चाहती थीं।

शत्रु सेना का पर्वत श्रृंखला के संकीर्ण प्रवेश मार्ग पहुंचते ही हुआ विनाशकारी दृश्य। चहुँ ओर से तीर और भालों ने शत्रु सेना को लहलुहान कर दिया। वह समझ ही नहीं पा रहे थे कि यह वार कहाँ से हो रहा था? और दूसरा विभिन्न प्रकार के हथियारों से उन पर आक्रमण होगा, इसकी तो उन्होंने कल्पना ही नहीं की थी। कोई चार-पांच घंटे का ही युद्ध चला होगा कि शत्रु सेना घबरा कर तितर बितर हो गई और अपनी जान बचाने भागने लगी। सम्राट अनु और अन्य उनके साथी सम्राटों ने बहुत प्रयास किया कि वह अपनी सेना का उत्साह बढ़ा सकें, लेकिन पूर्ण तरह से असमर्थ रहे। जब लगभग पूरी सेना भाग गई, तब महर्षि कुर्तुक के कुछ सैनिक तलवार से बाकी सेना पर टूट पड़े।

इस प्रकार महर्षि कुर्तुक की व्यूह रचना एवं उनकी सेना के लोहे से बने हथियारों की मार शत्रु सेना के दिग्गज सहन नहीं कर पाए और कुछ ही घंटों में युद्ध समाप्त हो गया। शत्रु सेना हर प्रकार से परास्त हो गई थी। कुछ घंटों में ही चले इस युद्ध में लगभग १०,००० शत्रु सैनिकों को वीरगति प्राप्त हुई जब कि सम्राट सुदास के केवल ५०० सैनिक ही वीरगति को प्राप्त हुए। इस युद्ध में शत्रु सेना के ६ सम्राट वीरगति को प्राप्त हुए। बाकी बचे ४ सम्राटों को सम्राट सुदास ने अभयदान दे दिया और आदेश दिया कि वहां से न्यूनतम २०० कोस दूर जा कर बसें।

अपनी इस बुरी पराजय से निराश हो, तथा इस भय से कि कहीं सम्राट सुदास के सैनिक उन्हें बंदी न बना लें, सम्राट विश्वरथ रणक्षेत्र से पलायन कर गए और भूमिगत हो गए।

इस युद्ध का उल्लेख ऋग्वेद के सातवें मंडल में ७:१८, ७:३३ और ७:८३:४-८ में मिलता है।

महर्षि वशिष्ठ से एकल युद्ध

दसराज्ञ युद्ध में पराजय के पश्चात सम्राट विश्वरथ विचार करने लगे कि मैं अग्निदेव के द्वारा दिए दिव्यास्त्रों को उपयोग में लाने में असमर्थ हूँ, अतः मुझे महर्षि वशिष्ठ से बदला लेने के लिए एकल युद्ध के लिए गहन सिद्धियाँ प्राप्त करनी होंगी। अपने पुत्र को राज सिंहासन सौंप कर वे तपस्या करने के लिये हिमालय की कन्दराओं में चले गये। कठोर तपस्या करके सम्राट विश्वरथ ने ब्रह्मदेव को प्रसन्न कर लिया, और उनसे दिव्य शक्तियों के साथ सम्पूर्ण धनुर्विद्या ज्ञान का वरदान प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार सम्पूर्ण धनुर्विद्या ज्ञान प्राप्त करके सम्राट विश्वरथ प्रतिशोध की भावना से अकेले ही महर्षि वशिष्ठ जी के आश्रम में पहुँचे। उन्हें ललकार कर सम्राट विश्वरथ ने अग्नि बाण चला दिया। अग्नि बाण से समस्त आश्रम में आग लग गई। आश्रमवासी भयभीत होकर इधर उधर भागने लगे। महर्षि वशिष्ठ ने भी अपना धनुष संभाल लिया, और बोले, "सम्राट विश्वरथ, मैं आपके सामने खड़ा हूँ, आप मुझ पर वार करें। आज मैं आपके अभिमान को चूर कर आप को बता दूँगा कि क्षात्रबल से ब्रह्मबल श्रेष्ठ है।" क्रुद्ध होकर सम्राट विश्वरथ ने 'आग्नेयास्त्र', 'वरुणास्त्र', 'रुद्रास्त्र', 'ऐन्द्रास्त्र' तथा 'पाशुपतास्त्र', सभी दिव्य अस्त्र एक साथ छोड़ दिये, जिन्हें महर्षि वशिष्ठ ने अपने मारक अस्त्रों से मार्ग में ही नष्ट कर दिया। इस पर सम्राट विश्वरथ ने और भी अधिक क्रोधित होकर 'मानव', 'मोहन', 'गान्धर्व', 'जूभण', 'दारण', 'वज्र', 'ब्रह्मपाश', 'कालपाश', 'वरुणपाश', 'पिनाक', 'दण्ड', 'पैशाच', 'क्रौंच', 'धर्मचक्र', 'कालचक्र', 'विष्णुचक्र', 'वायव्य', 'मंथन', 'कंकाल', 'मूसल',

'विद्याधर', 'कालास्त्र' आदि सभी अस्त्रों का प्रयोग कर डाला। महर्षि वशिष्ठ ने उन सब को नष्ट करके ब्रह्मास्त्र छोड़ने के लिये जब अपना धनुष उठाया ही था कि सभी देव, नर-नारी, किन्नर आदि भयभीत हो गये। महर्षि वशिष्ठ उस समय अत्यन्त क्रुद्ध थे, अतः उन्होंने ब्रह्मास्त्र छोड़ ही दिया। ब्रह्मास्त्र की भयंकर ज्योति और गगन भेदी नाद से सारा संसार पीड़ा से तड़पने लगा। सब ऋषि, देव आदि उनसे प्रार्थना करने लगे कि आपने सम्राट विश्वरथ को परास्त कर दिया है, अब ब्रह्मास्त्र से उत्पन्न हुई ज्वाला को शान्त करें। इस प्रार्थना से द्रवित होकर उन्होंने ब्रह्मास्त्र को वापस बुलाया और मन्त्रों से उसे शान्त किया।

पराजित होकर सम्राट विश्वरथ मणिहीन सर्प की भाँति पृथ्वी पर बैठ गये, और सोचने लगे कि निःसंदेह अभी भी महर्षि वशिष्ठ का ब्रह्मबल ही श्रेष्ठ है।

गहन तप के लिए प्रस्थान

सम्राट विश्वरथ तब महर्षि जमदग्नि के आश्रम में गए। महर्षि जमदग्नि उनके बचपन के मित्र ही नहीं, भाई से भी बढ़कर थे जिनके साथ उन्होंने बहुत समय बिताया था। सम्राट विश्वरथ ने सुन रखा था कि स्वयं भगवान् विष्णु ने उनके पुत्र परशुराम के रूप में उनके गृह में अवतार लिया है। अवश्य ही वह मुझे महर्षि वशिष्ठ पर विजय प्राप्त करने की कोई युक्ति बताएँगे, ऐसा विचारते हुए उन्होंने महर्षि जमदग्नि के आश्रम में कदम रक्खा।

महर्षि जमदग्नि ने हृदय से लगाकर सम्राट विश्वरथ का स्वागत किया। सम्राट की यह दशा देख उन्हें अत्यंत दुःख हुआ। तब सम्राट विश्वरथ ने जिस प्रकार उन्होंने महर्षि वशिष्ठ पर आक्रमण किया और पराजय मिली, सभी वृतांत बतलाया।

गंभीरता से महर्षि जमदग्नि ने सम्राट विश्वरथ की व्यथा सुनी, और बोले, 'हे राजन, महर्षि वशिष्ठ जैसे आध्यात्मिक रूप से उन्नत व्यक्ति से युद्ध करना उचित नहीं है। मैं तुम्हारा दुःख समझ सकता हूँ क्योंकि तुम मेरे लिए भाई से भी बढ़कर हो, किंतु तुम्हारी भावना तुम्हारे सुविचारों पर हावी हो गया है, और तुम सही निर्णय नहीं ले पा रहे हो।'

सम्राट विश्वरथ और उदास हो गए। वह चुपचाप बैठे महर्षि जमदग्नि की बातें सुनते रहे।

महर्षि जमदग्नि ने आगे कहना प्रारम्भ किया, 'ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के पास ये शक्तियाँ जन्म से नहीं हैं। ये सब उन्होंने कठोर तपस्या से प्राप्त की हैं। उन्होंने युगों तक परिश्रम किया है तथा अपनी दूर संवेदी क्षमता को इतना प्रखर बना लिया है कि वे आवश्यकता पड़ने पर सीधे इंद्र से संपर्क करके सहायता माँग सकते हैं। स्मरण रहे कि इंद्र को स्वर्ग का राज्य एवं देवपति की पदवी कोई अदिति के पुत्र होने के कारण नहीं मिली, अपितु उन्होंने वृत्रासुर को मारकर तथा संसार को जीवनदायी जल उपलब्ध करवाने के बाद अपनी योग्यता सिद्ध की, तब यह स्थान पाया। क्षत्रिय होने के नाते, यह तुम्हारा उत्तरदायित्व और कर्तव्य दोनों हैं कि तुम शेष तीनों वर्णों (ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र) की रक्षा करो। ध्यान रहे मेरे भाई कि एक राजा के लिए अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाएँ का कोई स्थान नहीं होता। अहंकार को त्याग दो तथा जीवन में आने वाले अन्य अवसरों पर ध्यान केंद्रित करो।'

सम्राट विश्वरथ अब अधिक सहन नहीं कर पाए और आवेश में बोले, 'महर्षि, मुझे जो करने को कहा जाए, मैं हमेशा वही क्यों करता रहूँ? मैं स्वयं अपना मार्ग बनाकर अपने भाग्य का निर्माण क्यों नहीं कर सकता? मैं इसी क्षण अपने समस्त उत्तरदायित्वों का त्याग करता हूँ। मेरे जीवन का बस अब यही एक उद्देश्य है, महर्षि वशिष्ठ से अपनी पराजय का बदला लेना। अगर तप से ही वह शक्तियाँ मिल सकती हैं तो ठीक है, मैं तप करूँगा। अब मैं तपस्या करके ब्राह्मण की पदवी और ब्रह्मत्व तेज प्राप्त करूँगा।'

ऐसा कहकर सम्राट विश्वरथ तप हेतु एक एकांत स्थान की तलाश में निकल पड़े। कुछ सप्ताह की यात्रा के बाद उन्हें अपनी पसंद

का एक स्थान मिल गया। यह स्थान वटपत्रक नामक नगर से थोड़ी दूरी माही नदी के समीप समुद्र से थोड़ी दूरी पर स्थित एक घना उपवन था। उन्होंने वन के बीच के स्थान को स्वच्छ किया और अपने लिए एक छोटी कुटिया बना ली। यह कुटिया काष्ठ की दीवारों एवं फूस की छत से निर्मित साधारण सा ढाँचा था, किंतु उनके रहने के लिए पर्याप्त था। अपने गुरुदेव ऋषि दत्तात्रेय के आश्रम में गुरुकुल वास के अनुभवों ने उनकी मौसम की अनिश्चितताओं से निपटने में अत्यंत मदद की। वह उस निर्जन स्थान पर उपलब्ध सीमित साधनों का उपयोग करने में सक्षम हो गए। अपने लिए मूलभूत सामग्री जुटा लेने के बाद, उन्होंने ध्यान लगाने पर गंभीरता से कार्य आरंभ कर दिया। उन्हें पता था कि यह कार्य, दिव्यास्त्रों के लिए किए गए यज्ञ की तुलना में अधिक लंबा और कठिन होगा, किंतु उन्हें यह भी पता था कि उनके पास अपनी लक्ष्य-प्राप्ति का, महर्षि वशिष्ठ को परास्त करने का, यही एकमात्र साधन था।

अप्सरा मेनका प्रति आकर्षण

सम्राट विश्वरथ तपस्या में लीन हो गए। प्रतिदिन सम्राट विश्वरथ की तपस्या की तीव्रता बढ़ती जा रही थी। उसकी प्रतिध्वनि का स्वर्गलोक तक अनुभव होने लगा। देवपति इन्द्र को सम्राट विश्वरथ की साधना पर संदेह होने लगा। उन्हें लगा कि विश्वरथ स्वर्ग का शासन चाह रहे हैं। देवराज इन्द्र ने इस विषय पर अन्य देवताओं से भी चर्चा की। उन्हें विश्वरथ के संकल्प और दृढ़ विश्वास का पूर्ण अनुमान था।

इंद्र के मन में प्रबल इच्छा उठी कि वह अपने वज्र के प्रहार से विश्वरथ को दंडित करके इस कहानी को यहीं समाप्त कर दें। परंतु तभी उन्हें आभास हुआ कि ऐसा करने से उनकी छवि को क्षति पहुंचेगी। प्रतिद्वंद्वियों को उनके विरुद्ध महाभियोग चलाने का अवसर मिल जाएगा। तभी उन्हें एक युक्ति सूझ गई। उन्होंने स्वर्ग की सबसे सुंदर अप्सरा, मेनका, को बुलाया, जिसका सौंदर्य विवरण से परे था। इन्द्र के कक्ष में प्रवेश करने पर देवपति इन्द्र ने मेनका का अभिनंदन किया, और बोले, 'हे प्रिये, मैंने तुम्हें एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य के लिए आमंत्रित किया है। मैं ऐसी आशा करता हूँ कि तुम अवश्य मेरा यह कार्य करोगी।'

'यदि यह शरीर मेरे प्रभु के काम नहीं आ सकता, तो यह मेरे किस काम का है? कौन है प्रभु, जिसे आप मेरे आकर्षण के योग्य समझते हैं? मेरे मोह से आज तक कोई भी नहीं बच सका, और मुझे विश्वास है कि आगे भी ऐसा कभी नहीं होगा,' मुस्कराते हुए मेनका बोलीं।

इन्द्र गंभीर स्वर में फिर बोले, 'हे मेनका, मैं जिसे लेकर चिंतित हूँ, वह न तो कोई देव है, न यक्ष, न असुर। वह एक मनुष्य है।'

मेनका अब थोड़ा क्रोधित हो गई, और कटाक्ष करते हुए बोलीं, 'क्या आपका आदेश एक साधारण मनुष्य का आलिंगन करने का है? मैं, देवलोक की सबसे मनमोहक अप्सरा, एक तुच्छ मानव के साथ आलिंगन करूँ? प्रभु, यह आपकी कैसी कल्पना है?'

'वह कोई साधारण पुरुष नहीं मेनका, स्वर्ग का राज्य जीतने की क्षमता रखता है,' इन्द्र बोले।

मेनका का क्रोध अब शांत हो गया, और एक गहरी श्वास के बाद उन्होंने पूछा, 'क्या मैं जान सकती हूँ कि वह मनुष्य कौन है जिसके लिए आप मेरा उपयोग करना चाहते हैं?'

इन्द्र विनती भाव में बोले, 'वह सम्राट विश्वरथ हैं। उन्होंने महायज्ञ कर देवताओं को प्रसन्न किया था, और हम सभी ने उन्हें दिव्यास्त्र प्रदान किए थे। लेकिन लगता है कि उनकी अभिलाषा चरम सीमा पर पहुँच गई है और अब वह स्वर्ग का राज्य प्राप्ति के लिए घनघोर तप कर रहे हैं। उनके इस तप को भंग करना अत्यंत आवश्यक है। तुम्हारा सौंदर्य इसके लिए पर्याप्त होगा। तुम्हारे अन्य प्रश्नों के उत्तर बाद में कार्य संपन्न होने के बाद सहर्ष दे दूँगा।' अभी मैं जैसा कहता हूँ वैसा करो।'

इन्द्र जानते थे कि वह मेनका से अपनी योजना को पूर्ण करवा सकते हैं, तथा साथ ही उसे गुप्त भी रख सकते हैं। उनके पास

विश्वरथ को जल्दी तथा निश्चित ढंग से असंतुलित करने का यही एकमात्र दाँव था।

मेनका ने चुनौती स्वीकार कर ली। इंद्र ने कामदेव का स्मरण किया और उन्हें भी मेनका की सहायता करने की विनती की। इंद्र का आदेश पा दोनों हँसते हुए पृथ्वीलोक पहुँच गए, और एक षड्यंत्र की रचना करने लगे। सम्राट विश्वरथ के आश्रम पहुँच कामदेव ने आश्रम के आस पास के वन्य क्षेत्र को फूलों के उद्यान में बदलना प्रारम्भ किया। काँटदार झाड़ियों के स्थान पर सुगंधित कुमुदिनी के पुष्प उगने लगे तथा वृक्षों को गुलाब एवं कचनार की लताओं ने आवृत कर लिया जिनके पीले व गुलाबी फूल हवा में बिखरने लगे। सूर्य आकाश में रूई के गट्टों की भाँति तैरते श्वेत मुलायम बादलों के पीछे छिप गया। कोयल वसंत के गीत गाने लगी तथा सरोवर में कमल पुष्पों की कलियाँ खिलने लगीं।

विश्वरथ सदैव की भाँति ब्रह्ममुहूर्त में उठकर दिनचर्या से निपट, नदी में स्नान कर वहीं तट पर समाधि में लीन हो गए। उनका ध्यान इस ओर गया ही नहीं। लेकिन संध्या समय जब समाधि टूटी तो अपने आस पास सुगन्धित उद्यान देख आश्चर्य चकित हो गए। कुटिया लौटते समय मार्ग में उनका ध्यान इस परिवर्तन पर गया। उन्हें पैरों के नीचे की मिट्टी भी मुलायम लग रही थी। जंगली झाड़ियों के स्थान पर पतली डाल वाले लचकदार वृक्ष खड़े थे। तट के समीप नारियल के वृक्ष फलों से लदे हुए थे, तथा हवा में चंपा और चमेली की सुगंध फैली थी। वन से मधुर स्वर की ध्वनि आ रही थी। तभी उन्होंने देखा कि तट के समीप थोड़ी दूर पर कोई और भी साधना में लीन था। वह धुँधली आकृति अस्त होते सूर्य की ओर

पीठ करके मुड़ी तो विश्वरथ की श्वास मानो उनके कंठ में अटक गई। इतनी सुंदर स्त्री इससे पूर्व उन्होंने कभी नहीं देखी थी। संध्या के मंद प्रकाश में उसका उत्कृष्ट सौंदर्य चमक रहा था। उसकी लंबी चोटी धरा का स्पर्श कर रही थी। संभवतः अभी उसने नदी में स्नान किया था, उसकी जल से भीगी साड़ी उसकी कामुकता को बढ़ा रही थी। उसने विश्वरथ को देखा और आदर सहित अभिवादन किया।

उसके सौंदर्य ने विश्वरथ के हृदय में उत्तेजना जगा दी। बड़े ही विनम्र भाव से वह उस स्त्री से बोले, 'हे देवी, मैंने यहाँ आपको पहले कभी नहीं देखा। आप अपना परिचय दें। मैं विश्वरथ, कान्यकुब्ज का सम्राट हूँ, तथा वानप्रस्थ ग्रहण कर ईश्वर की स्तुति में लगा हूँ।'

मेनका ने अब विश्वरथ की ओर देखा। वे जटाधारी थे, उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी एवं उन्होंने ऋषि समान अंग वस्त्र धारण किए हुए थे। उनके अधिकारपूर्ण स्वर से उनका व्यक्तित्व और भी निखर रहा था। इस व्यक्तित्व पर मेनका भी आकर्षित हो गई। इस आकर्षण के आगे उसे स्वर्गलोक का जीवन नीरस एवं आनंदविहीन लगने लगा। वह अत्यंत मधुर स्वर में तब बोली, 'हे सम्राट, मैं अपने समूह के साथ तीर्थ यात्रा पर निकली थी। लगता है कि यहां वृक्ष की शीतल छाया में मुझे नींद आ गई। मैं जब सोकर उठी तो मैंने अपने समूह के लोगों को नहीं पाया। लगता है कि वे लोग मुझे यहाँ छोड़कर चले गए।'

विश्वरथ को इस पर आश्चर्य तो अवश्य हुआ, लेकिन इस सन्दर्भ में बोले कुछ नहीं। उनके मन में अचानक मेनका के प्रति सहानुभूति

पैदा हो गई। अपने को संयमित कर बोले, 'हे देवी, मेरी कुटिया निकट ही है। जब तक तुम्हारे समूह के लोग तुम्हें ढूँढने आएँ, तब तक तुम मेरी कुटिया में निवास कर सकती हो।'

मेनका ने विश्वरथ के आग्रह को स्वीकार किया और उनके साथ उनकी कुटिया में चल दी। इस स्त्री की साड़ी भीगी हुई थी और विश्वरथ को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह ठण्ड से सिकुड़ रही है। कुटिया पहुँच उन्होंने यज्ञ के लिए एकत्रित लकड़ीओं से अग्नि प्रज्वलित की। अग्नि की उष्णा से स्त्री को कुछ आराम अवश्य मिला परन्तु उसके भीगे वस्त्र उसको कम्पन पैदा कर रहे थे। अतः विश्वरथ ने अपने ऋषि वस्त्र का एक भाग उसे देकर आग्रह किया कि वह अपने वस्त्र बदल ले। उसने तुरंत विश्वरथ की आज्ञा का पालन किया। ऋषि वस्त्र इतने छोटे थे कि उसके शरीर का प्रत्येक अंग उसे और कामुक बना रहा था।

विश्वरथ ने एक समय से किसी स्त्री का अवलोकन नहीं किया था। इस दृश्य ने उनको कामुक बना दिया। इस समय वह अपनी महर्षि वशिष्ठ से शत्रुता एवं विशेष दिव्यास्तों को प्राप्त करने हेतु तप की बातों को भूल गए। तुरंत मेनका को अपनी ओर खींच सीने से लगा लिया। दोनों ओर से काम भावना प्रगाढ़ हो गई, और दोनों का शरीर एक हो गया।

समय बीतता चला गया। आज पांच वर्ष हो जाएंगे मेनका को विश्वरथ के साथ रहते हुए। न जाने क्यों मेनका का हृदय स्वर्गलोक वापस जाने को करता ही नहीं था। कहीं उसे विश्वरथ से प्रेम तो नहीं हो गया था? मेनका ने गर्भ धारण कर लिया। जब मेनका ने

यह विश्वरथ को बताया तो उनकी प्रसन्नता का अंत ही नहीं था। अपने सौ पुत्रों के जन्म पर भी वह कभी इतने प्रसन्न नहीं हुए थे जितना आज मेनका के गर्भ धारण से हुए। अपनी यौगिक शक्तियों से तुरंत जान लिया कि गर्भ में कन्या है।

विश्वरथ को इतना प्रसन्न जान तथा अपने प्रति प्रेम भाव देख अब मेनका का हृदय विवश हो गया कि वह विश्वरथ को सत्य से अवगत कराए। वह कोई परिवार अथवा समाज द्वारा त्यागी हुई नारी नहीं, बल्कि स्वर्ग की एक अप्सरा है जिसे देवराज इंद्र ने उनका तप भंग करने के लिए पृथ्वी पर भेजा है। मेनका को पूर्ण विश्वास हो गया था कि विश्वरथ उसके इस असत्य को क्षमा कर उसे हृदय से स्वीकार कर लेंगे। सुबह की बेला में जब विश्वरथ उसके बालों से खेलते हुए अपने प्रेम का प्रदर्शन कर रहे थे, तब साहस कर मेनका ने विश्वरथ को सत्य से अवगत कराया।

मेनका की आशा के विपरीत, यह सत्य सुन विश्वरथ क्रोधित हो गए। बोले अवश्य कुछ नहीं, केवल आकाश की ओर शून्य में देखते रहे। क्रोध शांत होने पर बोले, 'हमारा मिलन बस यहीं तक था। मुझे तुम्हारे नेत्रों में अब केवल इंद्र और देवताओं का उपहास दिखाई पड़ रहा है, जो मेरी मूर्खता पर हंस रहे हैं। मुझे आभास था कि मैं एक आदर्श जीवन जी रहा हूँ, परन्तु तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मैंने तुम्हारे साथ सच्चा प्रेम किया है, अतः श्राप तो नहीं दूंगा, लेकिन तुम यहां से तुरंत चली जाओ, और मुझे अपना चेहरा कभी मत दिखाना।'

यह कहकर विश्वरथ वन में न जाने कहाँ चले गए। मेनका इस अचानक आघात से अचंबित हो, लड़खड़ाती हुई अर्द्ध मूर्छित अवस्था में विश्वरथ के आश्रम से धीरे धीरे वन में निकल पड़ी। उसे पता ही नहीं चला कि वह कहाँ पहुँच गई। उसे लगने लगा कि शीघ्र ही वह मूर्छित होकर गिर पड़ेगी और हुआ भी ऐसा ही। जब उसकी मूर्छा खुली तो उसने अपना आप को एक अन्य ऋषि के आश्रम में पाया। यह महर्षि कण्व का आश्रम था।

महर्षि कण्व के शिष्य वन में यज्ञ हेतु लकड़ियाँ बीनने निकले हुए थे। वन में उन्होंने एक नारी को मूर्छित अवस्था में देखा। वह तुरंत उसे अपने आश्रम ले आए।

महर्षि कण्व की अनुभवी आँखों ने तुरंत जान लिया कि कन्या गर्भवती है। कन्या की मूर्छा टूटने पर उन्होंने उससे समस्त विवरण जानने का प्रयास किया, परन्तु मेनका केवल रोए ही जा रही थी। तब महर्षि कण्व ने यौगिक शक्ति से सब जान लिया, परन्तु किसी से कुछ नहीं बोले। गुरुमाता को आदेश दिया, उसकी भली भाँती देखभाल करने का।

समय आने पर कन्या ने एक अति सुन्दर पुत्री को जन्म दिया। कन्या के जन्म समय न जाने कहाँ से अगनित शकुन्त पक्षियों का आगमन हुआ। उनका चहचहाना एक अत्यंत शुभ सन्देश दे रहा था। महर्षि ने उसका नाम संस्करण संस्कार किया, और नाम रक्खा, 'शकुंतला', अर्थात् शकुन्त पक्षियों द्वारा अभिनंदित।

पुत्री के जन्म के बाद से ही मेनका का मन अब पृथ्वीलोक से उचाट हो गया। उसे स्वर्गलोक की याद आने लगी, और एक दिन वह रात्रि में चुपके से उठी और पुत्री शकुंतला को गुरुमाता के चरणों में रखकर वहां से चली गई, स्वर्ग लोक। पुत्री का लालन पालन गुरुमाता द्वारा महर्षि कण्व के आश्रम में होने लगा। युवा होने पर इनका विवाह सूर्यवंशी चक्रवर्ती महाराज दुष्यंत के साथ हुआ। इनके पुत्र चक्रवर्ती सम्राट भरत हुए जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।

विश्वरथ को गायत्री मन्त्र और ब्रह्मऋषि उपाधि

मेनका के आश्रम से चले जाने के बाद विश्वरथ कई दिनों तक वन में भटकते रहे। उन्हें रह रह कर मेनका की याद आती रही। उनकी आत्मा उन्हें कचोटने लगी कि मेनका ने अवश्य उनके साथ छल किया पर विश्व में आने वाली नई कन्या का तो कोई दोष नहीं था। संभवतः यह उन्होंने कोई बड़ा अपराध कर दिया। हृदय ग्लानि से भर गया। विचार आया, तुरंत उन्हें मेनका को ढूँढ़ना चाहिए। तभी 'नारायण नारायण' पुकारती हुई कोई छाया उन्हें दिखाई दी। समीप आने पर पहचाना, यह तो ब्रह्मऋषि नारद हैं। उनके चरणों में गिर गए और हृदय शांति की प्रार्थना करने लगे। ब्रह्मऋषि नारद ने उनको तब बताया कि मेनका सुरक्षित महर्षि कण्व के आश्रम में है। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा, ' हे विश्वरथ, अब अधिक समय न गंवाओ। अपनी साधना पूर्ण करो। तुम्हारा जन्म विश्व उद्धार के किसी विशेष कार्य के लिए हुआ है। अपना कार्य सम्पूर्ण करो। '

ब्रह्मऋषि नारद के शब्दों को हृदय में रख, विश्वरथ वापस अपने आश्रम में आ गए, और अपना समस्त ध्यान अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु साधना पर लगाना प्रारम्भ कर दिया।

साधना में दिन, माह और फिर अनेक वर्ष बीत गए। विश्वरथ अपने शरीर को स्थित कर समाधि में रम गए। उन्होंने भोजन, जल तथा निद्रा का भी त्याग कर दिया। वे अपने अंदर आत्मतत्त्व में इतना लीन हो गए कि उन्हें बाहरी जगत की गतिविधियों का भान नहीं रहा। उनके आश्रम में लताएँ फैलती चली गईं। शास्त्रों में उल्लेख है कि वह वट वृक्ष जिसके नीचे विश्वरथ ध्यान लगाए बैठे थे, उसकी

शाखाएँ एक मील तक फैल गईं। धीरे धीरे पूरा क्षेत्र स्तंभ युक्त आश्रय में परिवर्तित हो गया जो विश्वरथ की मौसम के उतार चढ़ाव से रक्षा करने लगा।

विश्वरथ को एक एक कर सिद्धियों प्राप्त होने लगीं। मुख्य पञ्च शक्तियों की उन्हें अनुभूति होने लगी। त्रिकालज्ञात्वम अर्थात् भूत, वर्तमान एवं भविष्य का ज्ञान, अद्वंद्वम अर्थात् चरम सीमा के तापमान को सहन करने की शक्ति, सामर्थ्य परचित्ताभिज्ञम अर्थात् किसी के भी मस्तिष्क को पढ़ लेने की क्षमता, प्रतिस्तम्भः अर्थात् पंचतत्वों को संशोधित करने की शक्ति, तथा अपराजेयः अर्थात् अजेयता शक्ति।

इन सब प्रमुख सिद्धियों की प्राप्ति के पश्चात् गौण सिद्धियों भी उन्हें प्राप्त होने लगीं जिससे उन्हें भूख, प्यास और शारीरिक कामना की इच्छाओं पर नियंत्रण प्राप्त हो सके। उन्होंने दिव्य दृष्टि एवं श्रवण संबंधी क्षमताएँ भी विकसित कर लीं ताकि वे बहुत दूरी से देख और सुन सकें। इसके बाद उन्होंने परकाया प्रवेश, इच्छानुसार रूप बदलने की शक्तियाँ, प्राप्त हुईं जिससे वे पशु, पक्षी, वृक्ष, देव, असुर अथवा मानव, किसी भी रूप धारण करने में समर्थ हो गए। एक अन्य दिव्य सिद्धि द्वारा उन्हें किसी भी लोक के निवासी से संपर्क करने की क्षमता मिल गई। अनेक वर्षों तक स्थिर रहने और इन सब सिद्धियों को प्राप्त करने के बाद विश्वरथ अपनी चेतना में लौटे।

इन सब शक्तियों की प्राप्ति पर भी विश्वरथ के हृदय को शान्ति नहीं मिली। वह न जाने किस दिव्य शक्ति से प्रभावित तपस्या करते

रहे। उन्हें स्वयं भी अब यह पता नहीं था कि वह क्या चाहते हैं? अब उनकी चाह संभवतः केवल परमात्मा की चाह रह गई थी।

तभी उन्हें एक तीव्र प्रकाश का भाव हुआ, जिसका स्थान शीघ्र ही एक देवी की आकृति ने ले लिया। उस देवी के पाँच सिर थे, जो भिन्न दिशाओं में देख रहे थे। उस देवी के दस हाथों में त्रिदेव के पास रहने वाले सभी अस्त्र थे। देवी शक्ति के दर्शन करते ही, विश्वरथ बैठकर नतमस्तक हुए, और स्वतः ही उनके मुख से संस्कृत का एक श्लोक निकल पड़ा:

**ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं ॥
भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥**

हे तीनों लोकों की स्वामिन, मैं आपके प्रकाशमान रूप का ध्यान करता हूँ। आपका ये रूप मेरी बुद्धि को सदैव सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे।

विश्वरथ ने प्रार्थना समाप्ति के पश्चात देवी के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। देवी ने विश्वरथ के सिर पर हाथ रखा और तभी तीव्र प्रकाश की धारा उनके दिव्य हाथों से निकलकर विश्वरथ के सिर में प्रविष्ट हो गई, जिसने उनकी कोशिकाओं को उत्तेजित कर दिया और उनकी जिह्वा से शब्द निकला, 'माँ गायत्री', तुम्हें नमन। हे वेदों की माता, आप ही सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा, उसके पालनहार विष्णु तथा विनाशक भगवान शिव की अर्धांगिनी ऊर्जा का रूप हैं। हे माँ, मेरे हृदय को पवित्र कीजिए तथा अपनी शरण में लीजिए।'

माँ गायत्री विश्वरथ के समीप आईं, और बोलीं, 'मैंने तुम्हारे लिए इस ब्रह्मांड का बीज मंत्र अनावृत कर दिया है। यह सबसे प्राचीन मंत्र है, जो ऊर्जा को पदार्थ में, और फिर पदार्थ को वापस ऊर्जा में बदल सकने की क्षमता रखता है। इस मंत्र की सहायता से संपूर्ण मानव जाति ध्यान लगाकर आत्म-बोध के लक्ष्य को प्राप्त कर सकने में सक्षम होगी।' यह कहकर और अपना आशीर्वाद देकर माँ गायत्री अंतर्धान हो गईं।

माँ के अन्तर्धान होते ही ब्रह्मदेव प्रगट हो गए, और आशीर्वाद देते हुए बोले, 'हे विश्वरथ, तुमने ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लिया। आज से तुम ब्रह्मऋषि विश्वामित्र के नाम से जग में विख्यात होगे। हे पुत्र तुम मेरे ही वंशज हो। मेरे पुत्र प्रजापति के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट कुश थे। उनके पुत्र सम्राट कुशनाभ और तुम्हारे पिता सम्राट गाधि उनके पुत्र थे। महर्षि वशिष्ठ मेरे पुत्र हैं, अतः तुम्हारे पूजनीय अग्रज हैं। अपने ही अग्रजों से शत्रुता शोभा नहीं देती। उनसे क्षमा मांगकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करो। विश्व में शान्ति प्रदान करने के लिए ही गायत्री ने तुम्हें महामंत्र दिया है। यह सन्देश विश्व में फैलाओ।' यह आशीर्वाद देकर तथा विश्वरथ को 'ब्रह्मऋषि विश्वामित्र' की उपाधि देकर ब्रह्मदेव अंतर्धान हो गए।

आगे की कथा सर्व विदित है कि किस प्रकार ब्रह्मऋषि विश्वामित्र ने ब्रह्मऋषि वशिष्ठ से मिलकर, उनसे क्षमित होकर, विश्व का मार्ग दर्शन किया। समय आने पर भगवान् श्री राम के गुरुपद को स्वीकार करते हुए राक्षसों का उनसे निर्वाण कराया, माँ अहल्या का उद्धार करवाया, एवं सीता माँ से उनका मिलन कराया।

गायत्री मन्त्र महात्मय

स्वयं माता गायत्री द्वारा जन कल्याण हेतु महर्षि विश्वामित्र को प्रदानित गायत्री महामंत्र ऋग्वेद का एक महत्वपूर्ण छंद बन गया। इस मंत्र द्वारा सवित देव की उपासना से इहलोक में सांसारिक सुख एवं परलोक में ईश्वर की प्राप्ति होती है, ऐसा महापुरुष और सनातन धर्म ग्रन्थ कहते हैं।

गायत्री मन्त्र एक विशेष छन्द है, जो २४ मात्राओं (८+८+८) के योग से बना है। स्वयं संस्कृत व्याकरण के जन्मदाता महर्षि पाणिनि ने व्यक्त किया है कि संस्कृत के छंद व्याकरण को ध्यान में रखते हुए इतनी सुन्दर रचना उन्होंने कहीं नहीं देखी। गायत्री मन्त्र ऋग्वेद के सात प्रसिद्ध छंदों - गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, बृहती, विराट, त्रिष्टुप् और जगती, में से एक है। जैसा उपरोक्त उल्लेख है, गायत्री छन्द में आठ आठ अक्षरों के तीन चरण हैं। गायत्री मन्त्र में तीन पद हैं (त्रिपदा वै गायत्री)। श्रुति ऐसा कहती है कि जब छंद या वाक के रूप में सृष्टि के प्रतीक की कल्पना की जाने लगी, तब इस विश्व को त्रिपदा गायत्री का स्वरूप माना गया। गायत्री के रूप में जीवन की प्रतीकात्मक व्याख्या होने लगी।

सनातन धर्म मान्यता के अनुसार हमारे सम्बन्धों की व्याख्या गायत्री मन्त्र से इस प्रकार की जा सकती है जो हमें इससे जोड़ती है - एक ओर विराट् विश्व और दूसरी ओर मानव जीवन, एक ओर देवतत्व और दूसरी ओर भूततत्त्व, एक ओर मन और दूसरी ओर तत्त्व, एक ओर ज्ञान और दूसरी ओर कर्म।

इस मन्त्र के देवता सविता हैं। सविता सूर्य की संज्ञा है, जो समस्त देवों को प्रेरित करते हैं। सविता देव को ऋग्वेद में मन का देव कहा गया है (देवं मनः - ऋग्वेद, १:१६४:१८)। मन ही प्राण का प्रेरक है। सविता देव मन प्राणों के रूप में सब कर्मों के अधिष्ठाता हैं, यह गायत्री मन्त्र के तीसरे चरण में स्पष्ट है। वेद कहते हैं, 'कर्माणि धियः', अर्थात् जिसे हम घी या बुद्धि तत्त्व कहते हैं वह केवल मन के द्वारा होने वाले विचार या कल्पना नहीं किंतु उन विचारों का कर्मरूप में परिवर्तित होना है। मन की कर्म-क्षम-शक्ति के लिए मन का सशक्त या बलिष्ठ होना आवश्यक है। यही कर्म-क्षम-शक्ति गायत्री मन्त्र द्वारा प्राप्त होती है।

गायत्री मन्त्र के पूर्व में जो तीन व्याहृतियाँ हैं, वे अति सहेतुक हैं। भू पृथ्वीलोक, ऋग्वेद, अग्नि, पार्थिव जगत् और जाग्रत् अवस्था का सूचक है। भुवः अंतरिक्षलोक, यजुर्वेद, वायु देवता, प्राणात्मक जगत् और स्वप्नावस्था का सूचक है। स्वः द्वियुलोक, सामवेद, आदित्यदेवता, मनोमय जगत् और सुषुप्ति अवस्था का सूचक है। अ, उ, म इन तीनों मात्राओं से ॐ का स्वरूप बना है। अ अग्नि, उ वायु और म आदित्य का प्रतीक है। यह विश्व प्रजापति का वाक है। इस वाक का अनंत विस्तार है जिसका स्फुट प्रतीक त्रिपदा गायत्री मन्त्र है। सत्य ही कहा है:

मुक्ता विद्रुम हेम नील धवलच्छायैर्मुख स्त्रीक्षणैर्युक्ता
मिन्दु निबद्ध रत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ।
गायत्रीं वरदाऽभयःङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुण ।
शंख चक्रमथारविन्दुयुगलं हस्तैर्वहन्ती भजे ॥

मोती, मूंगा, सुवर्ण, नीलम, तथा हीरा इत्यादि रत्नों की तीक्ष्ण आभा से जिनका मुख मण्डल उल्लसित हो रहा है, चंद्रमा रूपी रत्न जिनके मुकुट में संलग्न हैं, जो आत्म तत्व का बोध कराने वाले वर्णों वाली हैं, जो वरद मुद्रा से युक्त अपने दोनों ओर के हाथों में अंकुश, अभय, चाबुक, कपाल, वीणा, शंख, चक्र, कमल धारण किए हुए हैं, ऐसी गायत्री देवी का हम जन कल्याण हेतु ध्यान करते हैं।

भगवान् श्री कृष्ण ने श्रीमद्भागवद्गीता में गायत्री मन्त्र की महिमा दर्शाते हुए स्वयं कहा है :

**बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥१०.३५॥**

सामों में मैं बृहत्साम और छन्दों में गायत्री छन्द हूँ। मैं मासों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में वसन्त हूँ।

सनातन धर्म में किसी भी अनुष्ठान के लिए देवताओं को जाग्रत करने के लिए सर्व प्रथम गायत्री मन्त्र उच्चारण करने के लिए कहा गया है ।

**यस्य कस्यापि मन्त्रस्य पुरश्चरणमारभेत् ।
व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं चायुतं जपेत् ॥
नृसिंहार्कवराहाणां तान्त्रिकं वैदिकं तथा ।
बिना जप्त्वातु गायत्रीं तत्सर्वं निष्फल भवेत् ॥**

किसी भी मंत्र की साधना को सफल बनाने के लिए उसे गायत्री मन्त्र से प्रारम्भ करें। चाहे वह उपासना श्री नृसिंह भगवान् की हो अथवा सूर्य देव की अथवा वराह अथवा किसी अन्य देव की, बिना गायत्री मन्त्र को प्रथम उवाच किए ईश्वर मन्त्र साधना निष्फल हो जाती है। इसलिए गायत्री उपासना प्रत्येक साधक के लिए अत्यंत आवश्यक है।

समस्त सनातन धर्म ग्रन्थों में गायत्री मन्त्र की महिमा एक स्वर से कही गई है। अथर्व वेद में गायत्री को आयु, विद्या, सन्तान, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करने वाली कहा गया है। श्रुति कहती है, 'गायत्री मन्त्र के सामान चारों वेदों में कोई मंत्र नहीं है। सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, दान, तप गायत्री की एक कला के समान भी नहीं है।'

गायत्री मंत्र के २४ अक्षरों में अनेक ज्ञान-विज्ञान छिपे हुए हैं। अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्र, सोना आदि बहुमूल्य धातुओं का बनाना, अमूल्य औषधियाँ, रसायन, दिव्य यन्त्र अनेक ऋद्धि-सिद्धियाँ, शाप, वरदान के प्रयोग, नाना प्रयोजनों के लिए नाना प्रकार के उपचार, परोक्ष विद्या, अन्तर्दृष्टि, प्राण विद्या, वेधक, प्रक्रिया, शूल शाल्य, वाममार्गी तंत्र विद्या, कुण्डलिनी, चक्र, दश, महाविद्या, महामातृका, जीवन, निर्मोक्ष, रूपान्तरण, अक्षात, सेवन, अदृश्य, दर्शन, शब्द परव्यूह, सूक्ष्म संभाषण आदि अनेक लुप्त प्राय महान् विद्याओं के रहस्य बीज और संकेत गायत्री में उपस्थित हैं। इन विद्याओं के कारण एक समय हम जगद्गुरु, चक्रवर्ती शासक और स्वर्ग सम्पदाओं के स्वामी बने हुए थे।

गायत्री साधना द्वारा आत्मा पर जमे हुए मल विक्षेप हो जाते हैं। आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है, और अनेक ऋद्धि-सिद्धियाँ परिलक्षित होने लगती हैं। जिस प्रकार दर्पण की सफाई करने पर उसके ऊपर जमीं धूल हट जाती है, उसी प्रकार गायत्री साधना से आत्मा निर्मल एवं प्रकाशवान् होकर ईश्वरीय शक्तियों, गुणों, सामर्थ्यों एवं सिद्धियों से परिपूर्ण बन जाती है।

आत्मा के कल्याण की अनेक साधनायें हैं। सभी का अपना अपना महत्त्व भी है और उनके परिणाम भी अलग अलग हैं। 'स्वाध्याय' से सन्मार्ग की जानकारी होती है। 'सत्संग' से स्वभाव और संस्कार बनते हैं। कथा सुनने से सद्भावनाएँ जाग्रत होती हैं। 'तीर्थयात्रा' से भावाङ्कुर पुष्ट होते हैं। 'कीर्तन' से तन्मयता का अभ्यास होता है। दान-पुण्य से सुख सौभाग्यों की वृद्धि होती है। 'पूजन-अर्चन' से आस्तिकता बढ़ती है। 'तप' का महत्त्व इन सबसे अधिक माना गया है। तप की अग्नि में पड़कर ही आत्मा के मल विक्षेप और पाप ताप जलते हैं। जप के द्वारा ही आत्मा में वह प्रचण्ड बल पैदा होता है जिसके द्वारा सांसारिक तथा आत्मिक जीवन की समस्याएँ हल होती हैं। तप की सामर्थ्य से ही नाना प्रकार की सूक्ष्म शक्तियाँ और दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसलिए तप साधन को सबसे शक्तिशाली माना गया है। तप के बिना आत्मा में अन्य किसी भी साधन से तेज प्रकाश बल एवं पराक्रम उत्पन्न नहीं होता।

गायत्री उपासना प्रत्यक्ष तपश्चर्या है। इससे तुरन्त आत्मबल बढ़ता है। गायत्री साधना एक बहुमूल्य दिव्य मन्त्र एवं संपत्ति दाता है। इस सम्पत्ति को एकत्रित करके साधक उसके बदले में सांसारिक सुख एवं आत्मिक आनन्द प्राप्त कर सकता है। इस महामंत्र की

उपासना आरम्भ करते ही साधक को ऐसा प्रतीत होता है कि उसके आन्तरिक क्षेत्र में एक नई हलचल एवं परिवर्तन प्रारम्भ हो गए हैं। सतोगुणी तत्त्वों की अभिवृद्धि होने से दुर्गुण, कुविचार, दुःस्वभाव एवं दुर्भाव घटने आरम्भ हो जाते हैं और संयम, नम्रता, पवित्रता, उत्साह, स्फूर्ति, श्रमशीलता, मधुरता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, उदारता, प्रेम, सन्तोष, शान्ति, सेवाभाव, आत्मीयता आदि सद्गुणों की मात्रा दिन प्रतिदिन शीघ्रता से बढ़ती जाती है। फलस्वरूप लोग साधक के स्वभाव एवं आचरण से सन्तुष्ट होकर उसे प्रशंसा, कृतज्ञता, श्रद्धा एवं सम्मान के भाव से देखने लगते हैं। सद्गुण स्वयं इतने मधुर होते हैं, कि जिस हृदय में इनका निवास होगा, वहाँ आत्म सन्तोष की परम शान्तिदायक शीतल निर्झरिणी सदा बहती है। ऐसे लोग सदा स्वर्गीय सुख आस्वादन करते हैं।

गायत्री साधना के साधक के मनःक्षेत्र में असाधारण परिवर्तन हो जाता है। विवेक, दूरदर्शिता, तत्त्वज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि की अभिवृद्धि हो जाने के कारण अनेक अज्ञान-जन्य दुःखों का निवारण हो जाता है। प्रारब्धवश अनिवार्य कर्मफल के कारण कष्टसाध्य परिस्थितियाँ हर एक के जीवन में आती रहती हैं। हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विभिन्न परिस्थितियों से जहाँ साधारण मनोभूमि के लोग मृत्यु तुल्य कष्ट पाते हैं, वहाँ आत्मबल सम्पन्न गायत्री साधक अपने विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आशा, धैर्य, सन्तोष, संयम और ईश्वर विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हँसते हँसते आसानी से काट लेते हैं। बुरी अथवा असाधारण परिस्थितियों में भी वह अपने आनन्द का मार्ग ढूँढ़ निकाल लेते हैं, और प्रसन्नता एवं निराकुलता का जीवन बिताते हैं।

सनातन ऋषियों ने गहन तपस्या और योग्य साधना करके अणिमा, महिमा आदि चमत्कारी ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उनके शाप और वरदान सफल होते थे। वे अद्भुत एवं चमत्कारी सामर्थ्यों से भरे पूरे थे। इनका वर्णन इतिहास एवं पुराणों में भरा पड़ा है। वह तपस्या और योग साधना गायत्री मन्त्र के आधार पर ही होती थीं, इसका उल्लेख मिलता है। गायत्री महाविद्या से ८४ प्रकार की महान् योग साधनाओं का उद्भव हुआ है।

गायत्री के २४ अक्षरों का गुंथन ऐसा विचित्र एवं रहस्यमय है कि उनके उच्चारण मात्र से जिह्वा, कण्ठ, तालु एवं मूर्धा में अवस्थित नाड़ी तंतुओं का एक अद्भुत क्रम में संचालन होता है। इस संचालन से शरीर के विभिन्न स्थानों में छिपे हुए षट्चक्र भ्रमर, कमल, ग्रन्थि संस्थान एवं शक्ति चक्र झंकृत होने लगते हैं। मुख की नाड़ियों द्वारा गायत्री के शब्दों के उच्चारण का आघात उन चक्रों तक पहुँचता है। जैसे सितार के तारों पर क्रमबद्ध उँगलियों फिराने से एक स्वर लहरी एवं ध्वनि तरंग उत्पन्न होती है, वैसी ही गायत्री चौबीस अक्षरों का उच्चारण उन चौबीस चक्रों में झंकारमय गुंजार उत्पन्न करता है जिससे वे स्वयमेव जाग्रत होकर योग शक्तियों से सम्पन्न बनते हैं। इस प्रकार गायत्री के जप से अनायास ही एक महत्त्वपूर्ण योग साधना होने लगती है, और उन गुप्त शक्ति केन्द्रों के जागरण से आश्चर्यजनक लाभ मिलने लगता है।

गायत्री भगवान् का नारी रूप है। संसार में सबसे अधिक स्नेहमूर्ति माता होती है। भगवान् की माता के रूप में उपासना करने से प्रत्युत्तर में उनका अपार वात्सल्य प्राप्त होता है। मातृ पूजा से नारी

जाति के प्रति पवित्रता, सदाचार एवं आदर के भाव बढ़ते हैं, जिनकी मानव जाति को आज अत्यधिक आवश्यकता है।

जैसा उपरोक्त वर्णन है, गायत्री महामंत्र वेदों का एक महत्त्वपूर्ण मंत्र है जिसकी महत्ता ॐ स्वरूप ईश्वर के बराबर मानी जाती है। यह यजुर्वेद के मंत्र 'ॐ भूर्भुवः स्वः' एवं ऋग्वेद के छंद ३.६२.१० में दर्शित है। गायत्री मन्त्र से निकली तरंगे ब्रह्माण्ड में जाकर बहुत से दिव्य और शक्तिशाली अणुओं और तत्वों को आकर्षित करके जोड़ देती हैं, और फिर पुनः अपने उद्गम पर लौट आती है जिससे मानव शरीर दिव्यता और परलौकिक सुख से भर जाता है।

गायत्री महामंत्र, 'ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥', उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा की अन्तःकरण से प्रार्थना है। उस परमात्मा से हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में लाने की स्तुति है।

ऐसा वर्णित है कि गायत्री मंत्र के जप से हमें निम्न लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

उत्साह एवं सकारात्मकता विचारों की वृद्धि, तामसिकता से घृणा, परमार्थ में रूचि, घटनाओं का पूर्वाभास होना, जन कल्याण करने की शक्ति, क्रोध शांति एवं ज्ञान वृद्धि इत्यादि।

गायत्री मन्त्र का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है।

ॐ : सर्वरक्षक परमात्मा

भू: : प्राणों से प्यारा

भुव: : दुख विनाशक

स्व: : सुखस्वरूप है

तत् : उस

सवितु: : उत्पादक, प्रकाशक, प्रेरक

वरेण्य : वरने योग्य

भुर्ग: : शुद्ध विज्ञान स्वरूप का

देवस्य : देव के

धीमहि : हम ध्यान करें

धियो : बुद्धियों को

य: : जो

न: : हमारी

प्रचोदयात : शुभ कार्यों में प्रेरित करें

उस सर्वरक्षक प्राणों से प्रिय, दुःखनाशक, सुखस्वरूप श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अंतरात्मा में धारण करें तथा वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें।

माँ गायत्री आरती

जयति जय गायत्री माता, जयति जय गायत्री माता ।
सत् मारग पर हमें चलाओ, जो है सुखदाता ॥
जयति जय गायत्री माता..

आदि शक्ति तुम अलख निरंजन जगपालक कर्त्री ।
दुःख शोक, भय, क्लेश कलश दारिद्र दैन्य हत्री ॥
जयति जय गायत्री माता..

ब्रह्म रूपिणी, प्रणात पालिन जगत धातु अम्बे ।
भव भयहारी, जन-हितकारी, सुखदा जगदम्बे ॥
जयति जय गायत्री माता..

भय हारिणी, भवतारिणी, अनघेअज आनन्द राशि ।
अविकारी, अखहरी, अविचलित, अमले, अविनाशी ॥
जयति जय गायत्री माता..

कामधेनु सतचित आनन्द जय गंगा गीता ।
सविता की शाश्वती, शक्ति तुम सावित्री सीता ॥
जयति जय गायत्री माता..

ऋग, यजु साम, अथर्व प्रणयनी, प्रणव महामहिमे ।
कुण्डलिनी सहस्र सुषुमन शोभा गुण गरिमे ॥
जयति जय गायत्री माता..

स्वाहा, स्वधा, शची ब्रह्माणी राधा रुद्राणी ।
जय सतरूपा, वाणी, विद्या, कमला कल्याणी ॥
जयति जय गायत्री माता..

जननी हम हैं दीन-हीन, दुःख-दरिद्र के घेरे ।
यदपि कुटिल, कपटी कपूत तउ बालक हैं तेरे ॥
जयति जय गायत्री माता..

स्नेहसनी करुणामय माता चरण शरण दीजै ।
विलख रहे हम शिशु सुत तेरे दया दृष्टि कीजै ॥
जयति जय गायत्री माता..

काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ, दुर्भाव द्वेष हरिये ।
शुद्ध बुद्धि निष्पाप हृदय मन को पवित्र करिये ॥
जयति जय गायत्री माता..

जयति जय गायत्री माता, जयति जय गायत्री माता ।
सत् मारग पर हमें चलाओ, जो है सुखदाता ॥
जयति जय गायत्री माता..



डॉ यतेंद्र शर्मा - सन १९५३ में एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया। उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधी विशिष्टता के साथ प्राप्त की। सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहे हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं।

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्था 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की। यह संस्था श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है।